* श्रीराधासरसविहारिणेनमः *

श्रीशुकसम्प्रदाय सिद्धान्तचंद्रिका

दोहा

सम्प्रदाय शुकदेवमुनि, चरणदास गुरुद्वार
परमधर्म भागवतमत, भक्तिअनन्यविचार

जिसमें

वेदोक्त पुराणोक्त श्रीशुकसम्प्रदाय सिद्धान्तका
सार तत्त्व और परमरहस्य सुगम और
सरल देश भाषा में वर्णन है,

जिसको

श्रीशुकसम्प्रदाय वैष्णव शिरोमणि परम अनन्य
पं० शिवदयाल हरिसंबन्धी नाम रसमाधुरी
शरण गौड-द्विज जयपुर निवासी ने
स्वमार्गीय वैष्णवों के सुखार्थ
संग्रह करके छपा कर
प्रकाशित किया

प्रथमावृत्तिः ५००

सम्वत् १९८० | जैलप्रेस, जयपुर. | मूल्य २) रुपया
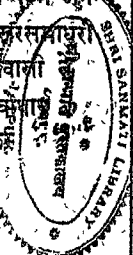
श्रीशुकदेवमुनि　　　　श्यामचरणदासजी

* श्रीसरसविहारिणेनमः *

* उपोद्‌घात वा भूमिका *

॥ श्रीशुकस्तुतिः ॥

यं प्रव्रजन्त मनुपेत मपेतकृत्यं द्वैपायनो विरह कातर आजुहाव ॥
पुत्रेतितन्मय तयातरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूत हृदयं मुनिमानतोस्मि ॥ १ ॥
यःस्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेक मध्यात्मदीपमतितितीर्षतांतमोन्धम् ॥
संसारिणां करुणयाह पुराणगुह्यं तंव्यासस्नु मुपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥ २ ॥

भावार्थः—मैं सर्व हृदय व्यापकमुनि (श्रीशुकदेव) को नमस्कार करताहूं जो नित्य किशोर हैं और मनुपेत (असूत्री वा उपनयनातीत) हैं और अपेत्यकृत्य (जो कर्मातीत) है वे सहज स्वभाव प्रेमानन्द में लयहोकर विचरते हैं ऐसे (श्रीशुकदेवको) श्रीकृष्ण द्वैपायन (श्रीवेदव्यास) विरहातुर होकर "हे पुत्र हे पुत्र,, पुकारते हैं, श्रीशुकदेव की तन्मयता (सर्व व्यापकता) के कारण वृक्षभी "हे पुत्र हे पुत्र" (वा शुकोहं शुकोहं) उत्तरदेत है, जिन्होंने संसारी जीवोंपर परम करुणा कर निज स्वभाव (अनुभवात्मक) श्रुतियों का सार तमोन्ध से तिरनें के लिये अध्यात्म दीपक रूप परम गुह्य पुराण (श्रीमद्भागवत) गानकी (वा कीर्तनकी) उन श्रीव्यासस्नु (श्रीशुकदेव) की शरणागतहूं ॥

उपरके दोनों श्लोको से भगवान् श्रीवेदव्यास मर्यादा पालन करते हुवे श्रीसूतजी के मुखसें श्रीशुकदेवस्तुति से श्रीमद्भागवत का मङ्गलाचरण करते हैं, उन श्रीशुकदेव भगवानको मुनिराजके सिवाय किस पतितपावन नामसे पुकारा जावे, जिस पुराण को श्रीभगवान् शुकदेव अपने श्रीमुखसे गानकरें वो श्रीमद्भागवत महापुराण न होतो क्या है और शास्त्रों में मुकुटमणि नहो तो क्या है और श्रीकृष्णकी परम पुनीत गाथा नहो तो क्या है, ऐसा शुकदेव वेदव्यास का श्लाघनीय लाडला पुत्र नहो तो क्या है।

इसी कारण मात्र संप्रदायों ने श्रीशुकदेवस्तुति में एक दूसरे से आगे बढने की होड बदी है, इसी प्रकार शुकदेवके परम माननीय शास्त्र श्रीमद्भागवतके सिद्धान्तो को लिये हुवे जो संप्रदाय जगत् का निस्तारकरें वह श्रीशुकदेव संप्रदाय के परमपावन नामसे विख्यात क्यों नहो, जिसप्रकार चतुष्क अन्तःकरण विना मन असमर्थ है, इसी प्रकार चारों संप्रदायों के लिये श्रीशुकदेव संप्रदाय भी शोभारूप है, जिसप्रकार पाँच अगुलीयों विना कोई वस्तु पकड़ी नहीं जाती और न कहीं चलाजाता है और पांच ईन्द्रिय विना कुछ अनुभव नहीं हो सकता और पंच प्राणों विना जीवन नहीं रहसकता और पंच तत्व विना सृष्टी की रचना नहीं होसकती और पंच यज्ञ विना धर्म की मर्य्यादा नहीं रह सकती और पंच तन्मात्रा विना माया का विस्तार नहीं होसकता और पंच अंग विना देवाराधन नही होसकता और पंच भेद विना उपासना अधूरी रहती है और पंच

संस्कार विना वैष्णवत्व नही प्राप्त होता और पंच रस बिना भावना नही जमता और पंच जातिपर (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र और अच्युत) वर्णाश्रमधर्म ठहरा हुवा है और तपस्या को भी पंच अग्नि की आवश्यकता है और पंच गव्यभी प्रसिद्ध है और पंचामृत के लियेभी पंच अमृत चाहिये और जीवात्माके भी पांचकोष है और पांच ही अग्नि के भेद हैं और छंद की पूर्तिके लियेभी पांचही पदों की आवश्यकता है, इसी प्रकार भगवत आराधन और श्रीकृष्णानुभव के लिये पांच संप्रदायों की आवश्यकता हैं, इसी प्रकार चारों इन्द्रिय रूप चारों संप्रदायों को मन रूप श्रीशुकसंप्रदाय को श्रीशुकदेव भगवान की इच्छा और प्रेरण से श्रीश्यामचरणदासाचार्य्य द्वारा प्रकाश व आविष्कार हुवा।

ऐसी परमपावनी संप्रदायके प्रकाशकी परम आवश्कता थी चारों वेदोंके संग्रह करने पर श्रीमद्महाभारत के रचने परभी श्रीपंचमवेद श्रीमद्भागवत का श्रीशुकदेव भगवान के श्रीमुखकमल से गान हुवा, इसी प्रकार चारों संप्रदायों के पश्चात् चारों संप्रदाय के सारको लियेहुवे और उनकी पूर्तिकरते हुवे पंचम संप्रदाय अर्थात् श्रीशुकसंप्रदाय का आविष्कारहुवा, जिसप्रकार चारों संप्रदाय दो दो नामों से विख्यात हैं, इसी प्रकार इस के भी आदि आचार्य्य के नाम से "श्रीशुकदेव संप्रदाय" और प्रवर्तक "आचार्य्य" श्रीश्यामचरणदासाचार्य्य के नाम से इस का श्रीश्यामचरणदासीय विख्यात है, जिस सद्ग्रन्थमें इस पंचम संप्रदाय के सिद्धान्तों का निर्णय और विस्तार हो वो ग्रन्थ मात्र वैष्नवों को और संप्रदाय अनुयायियों को कैसा आदरणीय होगा, इस के जताने की आवश्यकता नही और जिसके रचयिता और संग्रह कर्ता साक्षात् श्रीभगवान् शुकदेव, श्रीश्यामचरणदासाचार्य्य की विभूति और गुणों को लिये हुये विराजमान श्रीपतित पावन दीनवत्सल अशरण शरण श्री १०८ "श्रीसरसमाधुरी शरणहों उस प्रेम प्रकाशिनी और भावदायिनी "श्रीशुकदेव सिद्धान्त चन्द्रिका" की चन्द्रिका न केवल अपने हीं सदन (श्रीशुकसंप्रदाय) को ही प्रकाशमान करती है, परन्तु जिस प्रकार दीपक की चन्द्रिका अपने घरमें विराजमान होते हुवे भी अपने आसपास वाले सब घरों को समान रीतिसे प्रकाशित करती है, इसी प्रकार श्रीशुकदेव की गायी हुई भागवत मात्र संप्रदायों को प्राणाधार है, इसी प्रकार परम पवित्र श्रीशुकदेव संप्रदाय सिद्धान्त चन्द्रिका भी मात्र संप्रदायों को प्रकाश देरही है।

प्रिय सज्जन पाठको! श्रीकृष्णानन्य! भक्तो इस अमूल्य ग्रन्थ के पाठ और विचारसे श्रीकृष्ण प्रेम और भाव और भक्ति की वृद्धि को प्राप्त करो, इस में कैसा अनूठा श्रीकृष्ण प्रेमरस और श्रीकृष्ण भक्तिके मार्मिक सिद्धान्त भरे हैं कि केवल पठन और विचार से प्राप्त हो सकते है॥

॥ शुभम्॥

निवेदक—

अलवर
तारीख २१ मई
सन् १९२३.

एम—वाई—सनम—एफ—टी—एस.
मेनेजर—श्रीकृष्णलायब्रेली,
अलवर.

* प्रस्तावना दोहावली *

संप्रदायशुक देवमुनि, तिनके शुचि सिद्धान्त ।
जिनको शुभ संग्रह कियो, सुनेमिटे मनभ्रान्त ॥ १ ॥
बहु ग्रन्थन में जो लिखे, नाना भांति वखान ।
किए एकत्र एकहि जगह, अतिशय उत्तम जान ॥ २ ॥
भारत गीता भागवत, वेद उपनिषद सार ।
सांडिल नारद सूत्र सें, लिखे परत्व विचार ॥ ३ ॥
श्री वाराहसु उपनिषद, रहस्य उपनिषद तत्व ।
ब्रह्मसंहिता सें लिखे, श्री सुकमुनि परत्व ॥ ४ ॥
वृहदसु पद्म पुरान में, अरु भविष्योत्र पुरान ।
तिनहूं से संग्रह किये, बहु परत्व रस खान ॥ ५ ॥
श्यामचरण के दास प्रभु, जिनके शिष्य प्रधान ।
उनकी बानी रचित से, लिखे परत्व रस खान ॥ ६ ॥
संप्रदाय के सन्तजन, तिन ग्रन्थन में देख ।
श्रीशुक महिमां के लिखे, उत्तम उत्तम लेख ॥ ७ ॥
सन्त महन्त महात्मा, रसिक भक्त रिझवार ।
पढ सुन परमानन्द सुख, पावै भली प्रकार ॥ ८ ॥
सेवक श्रीशुक सम्प्रदा, जिनको प्रान आधार ।
शंका संशय सब मिटें, लहें भेद ततूसार ॥ ९ ॥
श्रद्धा अरु विश्वास दृढ, उरमें उपजे आय ।
जुगल भजन मन मगन हो, वढे प्रेम अधिकाय ॥ १० ॥
संशय शंका मिटे विन, भाव भजन दृढ नांहि ।
श्रद्धा उर उपजे नहीं, समझ देख मन मांहि ॥ ११ ॥
यहि समझ संग्रह कियो, सम्प्रदाय सिद्धान्त ।
निर संशय हो सहज में, उर उपजे अति शान्त ॥ १२ ॥
रसिक रंगीले जुगल के, जिनके जीवनप्रान ।
पढें प्रेम करके सभी, तज कुतर्क अभिमान ॥ १३ ॥

हरि गुरु भक्तन मन हरन, दूर करन सन्देह ।
प्रगट करे अनुरागको, निस दिन सरसे नेह ॥ १४ ॥
भक्ति भक्त भगवत गुरु, चारों एक समान ।
सरसमाधुरी शरण को, देहु प्रेम रस दान ॥ १५ ॥

❀ ग्रन्थ प्रमाण श्लोक ❀

टिकाकारवाक्य	६६ श्लोक;	षट्संदर्भे	२ श्लोक;	शांडिल्यसंहितायां	२ श्लोक;
श्रीमद्भागवते	५२ ,,	रहस्योपनिषद्	२ ,,	गोपालतापनी	१३ ,,
श्रीमहाभारते	२६ ,,	श्रुति	२ ,,	अद्वैतसिद्धान्त	१२ ,,
श्रीमद्भगवद्गीता	३८ ,,	नारदपंचरात्रे	४ ,,	गोपालसहस्रनाम	४ ,,
ब्रह्मांडपुराणे	१२ ,,	नारद सूत्रे	२ ,,	सनत्कुमारसंहिता	१ ,,
पद्मपुराणे	४७ ,,	अथर्ववेद	७ ,,	नारायणोपनिषद्	१ ,,
ब्रह्मवैवर्त्तपुराणे	२ ,,	सामवेद	१ ,,	वैष्णवपद्धति	५ ,,
स्कन्दपुराणे	६ ,,	ऋग्वेद	५ ,,	आचारदर्शक	१ ,,
आदिपुराणे	२ ,,	कर्मपद्धति	३ ,,	शांडिल्य सूत्रे	२ ,,
वामनपुराणे	१ ,,	पांडवगीता	१ ,,	पराशरस्मृति	१ ,,

पद दो. कवित चार. छन्द चार. सवैया एक. चौपाई चौदा, और विशेष ।

सब ग्रंथनको सार हैं, भक्ति योग वैराग ।
राधा-कृष्णसु युगलके, पगे रहें अनुराग ॥

पक्षपाती जनो से निवेदन है कि इसमें शुद्धा शुद्ध पत्र होने परभी यदि अशुद्धियां रहीं होंतो क्षमा कर पत्र द्वारा सूचित करेंगे; जो कि दूसरी वार शुद्ध करके छापी जावेंगी; क्योंकि ऐसा लिखा है-

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥

आशा करताहूं कि यह ग्रन्थ प्रत्येक संप्रदाय के वैष्णवगण को विशेष आनन्द के देनेवाला है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ।

सज्जनकृपाभिलाषी-

पंडित शिवदयाल, हरिसंवन्धी नाम
सरसमाधुरी शरण गौड-द्विज़, जयपुर.

॥ सूचीपत्र ॥

नम्बर.	विषय.	पृष्ठ.
१	नमस्कारात्मक मङ्गलाचरण	१
२	संप्रदायशब्दार्थ, भावार्थ	२
३	संप्रदायपरम्पराकुलतत्र विंदुकुल श्रीशुकसंप्रदायका विंदुकुलवृक्ष	४
४	श्रीशुकदेवसंप्रदायनादकुलवृक्ष	७
५	श्रीराधावल्लभीयसंप्रदायकावृक्ष	८
६	गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजी	६
७	आचार्य्य महत्व लक्षण	१७
८	श्रीवेदव्यास सुयश वर्णन	२१
६	टीकाकारवाक्यम्	२५
१०	श्रीशुकाचार्य्य सर्व मान्य	२६
११	श्रीशुकाचार्य्य जन्म बधाई	३२
१२	विहंगमगतिमुक्तिमार्ग०	३४
१३	वार्ता व्याख्या	३८
१४	श्रीमद्भागवत रसात्मक फलआस्वादन प्रशंसा वर्णन	४२
१५	आचार्य्य कर्तव्य	४३
१६	श्रीशुकमुनि महत्व वर्णन	४४
१७	अद्वैत संप्रदाय कुल वृक्ष और श्रीशुकाचार्य्य सखीरुपवर्णन	४६
१८	श्रीशुकनाम व्युत्पत्ति	४७
१९	श्रीमतश्यामचरणदासाचार्य०	४९
२०	श्रीमतचरणदास ध्यान	५०
२१	श्रीचरणदासजीकेसखीस्वरूप निकुंजसंबंधी अष्टनाम, और श्रीअखेराम गुरु शिष्य संवाद	५१
२२	शिष्य, गुरु वचन	५२
२३	श्रीश्यामचरणदासमहाराज का- सखीभेष धारन, व दर्शनाभि- लाषी वृन्दावन पधारे प्रसंग	५३
२४	श्रीकिशोरीअलीजीने श्रीश्याम- चरणदासाचार्यजी से पत्र०	५४
२५	श्रीसोभनदासजीका जीवन०	५५
२६	श्रीगुरुपरत्व वर्णन	५६
२७	श्रीगुरुदीक्षा परत्व	६७
२८	उपनयन संस्कार दीक्षा सं०	६८
२६	षड्विधा शरणागति वर्णन	६६
३०	श्रीगुरुदीक्षामंत्र उपदेश और पंचसंस्कार वर्णन	७१
३१	तिलकाकार वर्णन	७२
३२	श्रीतिलक परत्व वर्णन	७३
३३	श्रीतिलक के नाम और फलास्तुति श्लोक व मुद्रा	७६
३४	तुलसीमाला धारणकरनेका०	७७
३५	दीक्षा मन्त्र	७८
३६	दीक्षा नाम	७९
३७	उपासना रीति पंचभूतशुद्धि	८०
३८	श्रीब्रजभूमि वृन्दावन महिमा	८१
३९	तुलसीमाला व चरणामृत और शालग्राम अर्चन माहात्म्य	८२
४०	नित्यनियमविधि व दिनचर्या श्रीमूर्तिसेवा विधि वर्णन	८६
४१	मानसोपचारसेवा नित्यनेम विधि वर्णन	९०
४२	प्रसादसेवन का मन्त्र, और श्रीयुगलमूर्ति व श्रीचित्र सेवा	६२

नम्बर.	विषय.	पृष्ठ.
४३	कर्म उपासना ज्ञानभक्ति	९४
४४	नवधाभक्ति लक्षण	९५
४५	नवधाभक्ति के अङ्ग	९७
४६	श्रीमूर्तिपूजन विषय वेदका प्रमाण	१०७
४७	अष्टाङ्ग प्रमाण लक्षण	१०९
४८	भक्ति, ज्ञानकी विवेचना	११३
४९	सविशेष निर्विशेष निर्णय	११९
५०	धाम वर्णन	१२९
५१	अवतार प्रकर्ण	१३०
५२	श्रीराधा तत्व वर्णन	१३७
५३	पंचरस वर्णन	१४२
५४	एकादशी व्रत व जागरण महात्म्य	१४५
५५	श्रीभगवतप्रसाद महिमा	१४६
५६	श्रीमद्भागवत महिमा	१५१
५७	वैष्णवोंके कर्तव्य	१५४
५८	नित्यसाकार मुक्ति वर्णन	१५५
५९	श्रीभगवत्सेवापराध वर्णन	१५७
६०	नामापराध वर्णन	१५८
६१	वर्षोत्सवों का सूचीपत्र	१५६
६२	सुधाआनन्द	१६०
६३	पद्मपुराणांतर्गत श्रीकृष्ण-भगवान्, श्रीशिव संवाद	१६३
६४	राजस, तामस, सात्विक पुराण वर्णन	१६५
६५	पंचपूजा वर्णन	१६७
६६	ऊर्द्ध लिखित अनुसार श्रीश्यामचरणदासाचार्य्य	१६९
६७	श्रीब्रह्माजी व भृगुआदि-ऋषि संवाद वर्णन	१७२
६८	श्रीकृष्णभगवान् प्रादुर्भाव, श्रीशुकसंप्रदाय धामक्षेत्र	१७९
६९	पंचसंस्कार नाम	१८०
७०	कंठी, तिलक व उत्सव	१८१
७१	धारना रहस्य	१८२
७२	दशकर्म त्याग	१८३
७३	दुर्व्यसन त्याग, श्रीगुरुद्वारा नित्यनेम	१८४
७४	श्रीशुकमुनी राज स्वरुपभाव	१८६
७५	श्रीश्यामचरणदास स्वरुपभाव	१८७
७६	सखीरुपा आचार्य्यावतार	१९१
७७	अष्टकुंज श्रीवृन्दावन	१९२
७८	श्रीजीके १६ तिथि और सप्तवारवस्त्र धारणकरने०	१९३
७९	मुक्ति और धामवरन	१९४
८०	च्यारशरीर व तीनसमाधि	१९५
८१	श्रीकृष्णकी १६ कला व, अष्टसिद्धि व, नवनिधि व, वेदके ३ प्रकरण व, वेदके ३ भाग	१९६
८२	एकादशी व्रत, तीन ताप, कामदेव, शुकमुनि विनय	१९७
८३	सूतक निर्णय	१९८
८४	फलास्तुति	२००

—*—

❋ शुद्धा शुद्ध पत्र ❋

(पहिले शुद्ध करलीजिये, फिर पढियेगा)

पृष्ट.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
७	२	भेता ऋषि	भेतामृषि
८	५	चरित्रमेंकहतहैं	चरित्रकहतहूं
१०	२२	शुककिसीकल्प	किसींकल्प
१२	२१	उन्होंने	उन्होंके
१३	३	प्रविस्तृतंमन	प्रविस्तृतंमनः
१३	७	यत्वाश्रियच्छतः	यत्वानियच्छतः
१३	१६	स्ततयांजले	स्तस्यांजले
१३	१७	शुक्रोनिर्मथ्य	शुकेनिर्मथ्य
१३	२०	विश्वावसुश्व	विश्वावसुश्च
१५	३	हाहाहूहूश्च	हाहाहूहूच
१६	२	प्रदक्षणा	प्रदक्षिणा
१६	७	उत्पन्नमात्र	उत्पन्नमात्रं
१६	१५	संभ्रहान्	ससंभ्रहान्
१६	२०	गुरुवे	गुरवे
१९	२०	स्कन्ध	
२०	१	साधूओं कि	साधुओंकी
२०	२	धमसे	धर्मसे
२०	२२	चार्यां	चार्य
२१	७	पृवर्तक	प्रवर्तक
२३	७	व्यासं	व्यास
२३	१२	दक्षणा	दक्षिणा
२६	२२	अयो निज	अयोनिज
२७	२	प्रियास	प्रयास
२९	५	गंन्य	गन्य
३३	१७	सैया	शैया
३४	१८	कर्म	क्रम
३४	१९	मुक्तैः	युक्तैः
३९	२	माह तारी	माहतारि
३९	५	नन्द	नन्दा
४०	५	प्रचार्य	प्राचार्य
४०	५	परम्परीम्	पारम्परीम्
४०	२०	कृष्णा	कृष्णं
४२	६	—के आगे मुक्तिददातिकर्हिचित्स्म-नभक्तियोगम्	
४४	२०	सारु	सार

पृष्ट.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
४६	३	शुक	शुकं
४७	१२	व्यूत्पत्ति	व्युत्पत्ति
५२	५	हैं	है
५२	१९	जहाकरजारें	जहांकरजोरें
५३	२३	ग्रन्थे में	ग्रन्थमें
६२	१४	मरो	मेरो
६५	२२	निषध्र	निषेध
६६	५	मत्यांबुद्धिः	मत्यांसद्धीः
६७	३	गुरु	गुरू
६७	६	आपहो	आपही
६७	८	किसीने	कोई
६७	१२	धर्मं	धर्मं
६७	१६	सर्वं	सर्वं
६८	८	जिह्नासु	जिज्ञासु
७१	६	नरौ	नरो
७१	७	परेः	परैः
७१	८	जितान्	जितात्
७१	८	पापान्	पापात्
७२	३	ज्योतिषा	ज्योतिरा
७३	९	पठ	पट्ट
७३	२०	रूप	रूपं
७५	७	नामें	नाम
७६	१०	देविती	देवींति
८०	४	वेदे	वेद्
८४	५	शंक्र	शाक्र
८६	१६	स्मरांते	स्मरन्ते
८७	१२	पादागुलि	पादांगुलि
९०	२	मिष्टान्	मिष्टान्न
९२	४	यश	यह
९२	११	दोऽर्ज्जुनो	द्रोऽर्ज्जुन
९२	१४	श्चैवा	श्चैव
९३	२०	को धसी	कोंधसी
९४	७	आश्रम	आश्रय
९५	६	दानं तप	दानतपः
९६	१८	दास	दासा

पृष्ठ. पंक्ति.	अशुद्ध	शुद्ध.
९९ – १४	क्षेम	क्षेमं
१०१ – ६	मधं	मघं
१०४ – १९	तस्मिवे	तस्मिवै
१०७ – १६	पियर्तन	पिपर्तन
१०९ – ७	ह्विज.	द्विज
११२ – २	यावयं	पावयं
११४ – २०	प्याधिक	प्याधिक
११५ – १५	सुखायो	सुखापो
११६ – ५	मामीपु	मामीयु
११६ – १८	घ परायण	परायण
११६ – २४	यो	य
११७ – २०	मावाद्	भावात्
११७ – २१	पतत्य	पतन्त्य
११८ – ६	त्वयि	त्वपि
११८ – १७	यो	य
११९ – ६	रुचिराणि	रुचिराण्येव
१२१ – २	दर्शादि	दर्सादी।
१२२ – १०	४ अध्याय १२७	१४ अध्याय २७
१२२ – १४	आश्रम	आश्रय
१२३ – २४	उसका	उसको
१२८ – १२	मभ्व्रामं	मग्रामे
१२८ – २१	कृष्णा	कृष्ण
१३० – ६	दिविव	दिवीव
१३२ – १	ल मङ्गल	लक्ष्मंगल
१३२ – ९	जैशी	जैसी
१३४ – ४	एकादशम	प्रथम
१३६ – ११	मयि	मयी
१३७ – २	भ्यायनकृष्ण	भ्यायेमकृष्णं
१३८ – ५	वहिरण्मयः	हिरण्मयः
१३९ – ५	तय	तया
१३९ – १८	ज्ञोति	ज्ज्योति
१४० – १०	प्रयत्नत	प्रयत्नतः
१४३ – २३	भलस्तुति	फलस्तुति
१४६ – ११	महाराज	महाभारत
१४८ – २१	प्रदिक्षिणा	प्रदक्षिणा
१५२ – १६	भगवान	भगवान्
१५७ – २०	नास्तिक	मास्तिक

पृष्ठ. पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१५७ – ५	पौरुष में	पुरुषमें
१५८ – ४	संग्रह	संग
१५९ – १०	वदि ऽऽ	वदि अमावस
१५९ – २६	का. सु. १४	का सु. १४-१५
१५९ – २६	स्नान।	स्नान दीवाली
१६१ – १४	हेतुर्को	हेतुर्का
१६३—में २३६ श्लोकका अर्थ अशुद्ध है		
” २३९ ” ” ” है		
१६४ –	सुरसत्तमा	सुरसत्तम
१६५ –	“भविष्यंतिमाह्निमुखा.” यह ज्यादा छपगया है	
१७१ – ९	उन्होंके	×
१६१ – १३	फन	फेन
१७२ – ५	मजं	मज
१७२ – ६	यांप्राप्तासो	याप्राप्तासाः
१७३ – ७	मावचास्त्ति	माकचित
१७३ – २३	निमितिकश्चवतथाप्राकृतिलय	नैमितिकश्चैवतथ प्राकृतिकोलयः
१६४ – ४	अतिल	अतल
१७४ – ९	चिन्मात्रे	चिन्मात्र
१७४ – १९	स्ततो	ततो
१७४ – २३	स्तुष्टोस्मिमृतमोः	तुष्टोस्मिव्रतमोः
१७५ – २	परक्षवाले	परक्षवोले
१७५ – ७	निगुर्णपरं	निर्गुणपरं
१७५ – २०	यानीया	पानीया
१७६ – २	सुखनिर्जर	सुखनिर्झर
१७६ – ५	मध्यास्थः	मध्यस्थः
१७७ – १८	विरंच्योथ	विरंच्येथ
१७७ – २१	वृन्दावन	वृन्दावन
१७८ – १२	प्रादुर्भावे	प्रापुर्भावे
१७८ – १३	संबन्धे	संबन्ध सें

—:#:—

श्रीयुत श्रीसद्गुरुस्वामी

पं० शिवदयालुजी हरिसम्बन्धी नाम सरसमाधुरी शरण।

N K. Press, Lucknow,

श्रीमच्छुकाचार्य्यचरणकमलेभ्योनमः

श्रीशुकदेवउत्पत्तिः

नमस्कारात्मकमङ्गलाचरणम्

* श्लोक *

ध्यानाद्यस्यप्रभोर्धाम ब्रह्मानन्दं च वाक्यतः ।
श्रीरतिंदर्शनाद्याति श्रीशुकं तं नमाम्यहम् ॥ १ ॥

अर्थ—जिनके ध्यान से प्रभु (श्रीकृष्ण) का धाम (गोलोक, अमरलोक) और जिनके वचन से ब्रह्मानन्द (कृष्णानन्द) और जिनके दर्शन से श्रीकृष्णरति (प्रेम) प्राप्त होता है, ऐसे श्रीशुकदेव भगवान को नमस्कार करताहूं ॥ १ ॥

आदौव्यासगृहेसुजन्मकथनं जातस्ययानं वने ।
अग्रेव्यासपराशरादिमहतां सिंहासनेसंस्थितिः ॥
ब्रह्मानन्दलयंगतस्य च पुनः श्रीकृष्णगाथारुचिः ।
श्रीमद्व्याससुतस्य तस्य चरितं किं किंनलोकोत्तरम्

अर्थ—प्रथम श्री व्यासजी के गृहमें जन्मका कथन जन्म लेते ही वनमें जानाव्यास पराशरादि बडों के सामने (श्रीमद्भागवदोपदेश के लिये) सिंहासन पर बिराजमान होना, ब्रह्मानंद में लय होते हुये पर भी श्रीकृष्णगाथा में रुचि है, ऐसे श्री व्यास सुत श्रीशुकदेव के कोन कोन से चरित्र इस लोक से तिराने वाले नहीं हैं ? अर्थात् सर्व चरित्र हैं ॥ २ ॥

स्वदासायप्रभोर्धाम लीलोत्सवप्रद मुनिम् ।
वन्दे चरणदासांघ्रिं शुकशिष्यशिरोमणिम् ॥ ३ ॥

अर्थ–अपने दास को प्रभुका धाम, लीला और उत्सव का सुखदान करने वाले मुनिराज श्री श्यामचरणदासजी के चरणाविंन्द में नमस्कार करताहूं, जो श्री शुकदेव के शिष्य शिरोमणि हैं ॥ ३ ॥

पुनः श्रीमद्गुरुं वन्दे बलदेव सुनामकम् ।
सरसंरूप माधुर्य्यं प्राप्तं यत्कृपया हरेः ॥ ४ ॥

अर्थ–पुनः श्रीमान् बलदेव नामक गुरुमहाराज को वन्दन करताहूं, जिनकी कृपा से श्री हरि के सरस मधुर रूप की प्राप्ती की ॥ ४ ॥

॥ संप्रदायशब्दार्थ और भावार्थ ॥

"संप्रदाय" एक संस्कृतशब्द है, इसकी वैयाकरण व्युत्पत्ति इस रीति से है कि यह शब्द समासान्त है और तीन शब्दोंके संयोग से बना है, वह शब्द यह है, "सम्" (अव्यय) "प्र" (उपसर्ग) "दाय" (दा–धातुका रूप है) "सम्" का अर्थ है "सम्यक्प्रकारसे" "प्र" का अर्थ है "प्रकर्षकरके" "दाय" का अर्थ है "जो दियाजावे" तीनों शब्दोंको एकसाथ मिलाने से यह अर्थ हुआ कि वह "वस्तु" (ज्ञान वा सिद्धान्त) जो सम्यक्प्रकारसे और प्रकर्ष करके दियाजावे ॥

अब हम व्याकरण व्युत्पत्ति को विस्तार भयसे समाप्त कर इस शब्द का प्रचलित भाषा के अनुकूल भावार्थ और यथार्थ भी सज्जन पाठकों के सम्मुख निवेदन करते हैं, संप्रदाय के शास्त्रीय प्रणाली के अनुसार उन अटल भगवद्संबंधी सिद्धान्त, उपदेश और ज्ञान को कहते हैं, कि जो 'श्रीमन्नारायण' के मुखारविन्द से उपदिष्टहोकर गुरुपरम्पराप्राप्त होकर "प्रचारक" आचार्यके द्वारा जगतमें विख्यात हुये हैं।

इसही कारण मात्र सम्प्रदायों के आदि आचार्य श्रीमन्नारायण अर्थात् भगवद्कृष्ण हैं, सम्प्रदाय के द्वो आचार्य होते हैं तिनमें एक मूल-आचार्य-जो सम्प्रदाय के सिद्धान्त का निर्णय करते हैं, और शास्त्रोंके आधार पर उसकी पुष्टि करते हैं, दूसरे प्रचारक आचार्य, जो उसको यथोचित रूपसे देशकाल के अनुसार आक्षेप के दूषणों को दूर करके उसका संस्थापन और पुनस्संस्कार करके पूरी तौर से पुनस्संचार करते हैं।

सम्प्रदायकी मर्यादा येही चली आती है, इसही कारण से सब सम्प्रदायों के आदि आचार्य श्रीमन्नारायण अर्थात् श्रीकृष्ण हैं, परन्तु जिनके द्वारा उस सम्प्रदाय का आविष्कार (प्रगटपना) होता है वही उसके आविष्कर्त्ता (प्रगटकर्त्ता) मूल या आदि आचार्य कहलाते हैं, यह मर्यादा मात्र संप्रदायों में चली आती है। इसही रीति से श्रीशुकदेव संप्रदाय के आविष्कर्त्ता श्रीमद्भागवत शुकदेव हैं। और श्रीमन्नारायण से श्रीशुकदेव तक क्या परम्परा है, उसका पता कुलवृक्ष (जो आगे दिया है) से लगेगा। इस संप्रदाय के प्रचारक आचार्य

श्रीभार्गवकुलभूषण श्रीमत्श्यामचरणदास हैं। इस संप्रदाय के मूल सिद्धान्त क्या हैं सो दिखाते हैं (१) ईश्वर (२) जीव (३) भगवदुपासना (४) मोक्ष (५) दिनचर्या (६) शील इत्यादि के विषयमें जो इस संप्रदाय का उद्देश्य और उपदेश हैं यथास्थान सब दिखाये जावेंगे।

॥ सम्प्रदाय परम्परा वा कुल तत्र-विन्दुकुल ॥

सम्प्रदाय में दो कुल मन्तव्य हैं—पहला कुल वह कहलाता है जो पिता पुत्र गत कुल निर्णित होता है इसको विन्दुकुल कहते हैं।

श्रीशुकसंप्रदायका विन्दुकुलपरम्पराका वृत्त यह है ॥

(१) श्रीमन्नारायण (श्रीकृष्ण)
|
(२) श्रीब्रह्मा
|
(३) श्रीवशिष्ठ
|
(४) श्रीशक्ति
|
(५) श्रीपराशर
|
(६) श्रीवेदव्यास
|
(७) श्रीशुकदेव
|
(८) (नादपुत्र) श्रीश्यामचरणदास

ऊपर लिखी हुई परम्परा विन्दुकुल कहलाती है, और

॥ दोहा ॥

ऐसी माया संगले, भयो पुरुष अभिराम ।
ईश्वर "नारायण" वही, ताही को परणाम ॥ १ ॥
जिनसों ब्रह्माजू भये, उपजावन जगदीश ।
परदच्छिणा तिनकी करूं, चरणन राखूं शीश ॥ २ ॥
जिनके "श्रीवशिष्ठ" मुनि, बोधरूप आनन्द ।
तिनके "श्रीशक्ति" तनय, नमोनमो सुखसिंध ॥ ३ ॥
पराशर तिनकी कला, तपसी अति निष्काम ।
रामरूप जनकरत है, बारम्बार प्रणाम ॥ ४ ॥
"वेदव्यास" तिनसों भये, सो ईश्वरअवतार ।
तीन काण्ड परगट किये प्रणामों बारम्बार ॥ ५ ॥
जिनके "श्रीशुकदेव" हैं, जानत सब संसार ।
सो मेरे मनमें बसो, उनही को आधार ॥ ६ ॥
परिकर्मा हितसों करूं, बहुत करूं दण्डौत ।
तीनलोक बिचरत रहैं, तिन बस कीन्ही मौत ॥ ७ ॥
जिन के "चरणहिदास" हैं, नादपुत्रही जान ।
तिनकी सत्संगत किये, मिटै तिमिर अज्ञान ॥ ८ ॥

(श्रीगुरुभक्तिप्रकाशः)

॥ नादपुत्र ॥

(१) पितासे पुत्रका संबन्ध बिन्दुसे होता है, इसलिये बिन्दुपुत्र कहाता है ।

(२) भक्तिउपदेश से उसको सद्गुरु पुनर्जन्म देते हैं,

इसकारन उसे नादपुत्र कहते हैं।

नादकुल—गुरुशिष्यकी परम्पराको गुरुपरम्परा कहते हैं। मन्त्रसम्बन्ध से नाद सम्बन्ध होताहै, गुरुशिष्यमें पितापुत्रका भाव है, पिता वीर्यदानसे जन्मदेता है, उपदेशदानसे श्रीगुरुदेव पुनर्जन्म देते हैं, पिता स्थूलशरीर का जन्मदाता है, और श्री गुरुदेव अध्यात्मजन्मदाता है, इसही कारण से मंत्रदीक्षा संस्कार को उपनयन कहते हैं, "उप" का अर्थ समीप है, "नयन" "नी" धातुसे निकला है जिसका अर्थ है गुरुके समीप लेजाना, तहां श्रीगुरुदेव इष्टदेव श्रीकृष्णका ध्यान और श्रीकृष्णमूलमन्त्रका प्रदानकरते हैं।

इसही समय पर वैष्णवीय नाम और तिलक इत्यादि पंचसंस्कार होते हैं, ऐसे मंत्रोपदेशक श्रीमत गुरुदेव होते हैं, इस वैष्णवी प्रथा के अनुसार मंत्रदान, नामदान, तिलकदान की प्रणाली को वैष्णवीय दीक्षा कहते हैं, इस ही दीक्षा से साम्प्रदायिक परम्परा चलती है, और यही नादकुल कहलाता है, इसही कुलको सम्प्रदाय कहते हैं, सम्प्रदाय का आधार इसही पर है, वास्तवमें एक सम्प्रदाय को दूसरी सम्प्रदाय से परिचित करनेवाला यही नादकुल है, मात्र सम्प्रदाय इस कुलको श्रीम न्नारायण (भगवत् श्रीकृष्ण) से आरम्भ करती है, और मूल व आदि आचार्य तक होती हुई प्रवर्त्तक आचार्यतक पहुंचाती है।

श्रीशुकसम्प्रदायभी श्रीमन्नारायण (भगवत् श्रीकृष्ण) से आरम्भ होकर श्रीशुकदेव तक चलीआती है, श्रीमद्भगवान् शुकदेव इस सम्प्रदायिक कुलको अपने मुखारविन्दसे श्रीमद्भागवत में लिखा है।

पुराणसंहितामेतां ऋषिर्नारायणोऽव्ययः ।
नारदाय पुरा प्राह कृष्णद्वैपायनाय सः ॥
सवैमह्यंमहाराज भगवानबादरायणः ।
इमां भागवतींप्रीतः संहितांवेदसंमिताम् ॥ ५ ॥

(श्रीमद्भागवतम् स्कंध २ अध्याय श्लोक.)

भावार्थ—इस पुराण संहिता (श्रीमद्भागवत) का अव्यय (अमर) ऋषी नारायण ने प्राचीनकाल में नारदको उपदेश दिया, उन्हों ने कृष्णद्वैपायन (श्रीवेदव्यास) को कही उन महाराज बादरायण (श्रीवेदव्यास) ने इस वेदसम्मित (वेदाश्रित) प्रीतिसंहिता भागवत को मुझ (श्रीशुकदेव) को सिखाई।

॥ श्रीशुकदेवसम्प्रदायनादकुलवृत्त ॥

श्रीनारायण
।
श्रीब्रह्मा
।
श्रीनारद
।
श्रीवेदव्यास
।
श्रीशुकदेव
।
श्रीश्यामचरणदास

श्रीभगवान शुकदेव ने श्रीश्यामचरणदासजी को मंत्रदीक्षा प्रदान करी यह प्रसंग आगे आवेगा।

श्रीमद्श्यामचरणदासाचार्य भी इस परम्पराको भक्तिसागर के ब्रजचरित्रअङ्ग में वन्दना करतेहुये यों प्रगट करते हैं।

दोहा—नारदमुनि अरुव्यासजू, करियेकृपादयाल।
अक्षर भूलों जोकहीं, कहो मोहि ततकाल ॥ १ ॥
श्रीशुकदेव दयालगुरु, मम मस्तकपर ईश।
ब्रजचरित्र में कहत हैं, तुमहिं नमाऊँ शीश ॥ २ ॥

श्रीश्यामचरणदासाचार्य के परमप्रियशिष्यारामसखीजी इस परम्परा को भक्तिरसमञ्जरीग्रन्थ में श्रीश्यामचरणदास रामसखी संवाद में लिखते हैं।

दोहा—नारायण विधिकोदियो, रसनिकुंजसुखमूल।
ब्रह्मा नारदको दियो, यह धन गोप्य अतूल ॥ १ ॥
श्रीनारद पुन व्यास को, व्यास पुनि शुकदेव।
श्रीशुक मोको कृपाकर दियो, रस अगम अभेव ॥ २ ॥

श्रीभक्तिरसमञ्जरी.

इस गुरु परम्परावृक्ष के प्रमाणपुष्टि में हम श्रीराधावल्लभीय संप्रदाय का कुलवृक्ष नीचे लिखते हैं, जिनकी परम्परा श्रीशुक-संप्रदाय के नादकुलवृक्ष से मिलती है ॥

॥ श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदाय का नादकुल वृक्ष ॥

(१) श्रीनारायण
।
(२) श्रीब्रह्मा
।
(३) श्रीनारद
।
(४) श्रीवेदव्यास
।
(५) श्रीशुकदेव

॥ गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजी ॥

श्रीशुकदेवभगवान से श्री हरिवंशगोस्वामी के मध्यके सोलह (१६) गुरुपरम्परा को हमने जानबूझके नही लिखा, कारण यह है कि हमको तो यह निर्णय करना है के श्रीशुकदेव सम्प्रदाय की परम्परा श्रीहितकुलकी संप्रदायिक परम्परा श्रीमन्नारायण से श्रीशुकदेवभगवान तक समान है, आगे चलकर परम्परा में भेद होगया है, जिस से हमारी निर्णयसिद्धिमें कोई हानी नहीं होती, और धाम क्षेत्र वर्णन में श्रीशुकदेवजी को अपनी सम्प्रदाय में "मुनि" माना है ॥

इसीतरहँ श्रीमद्गोस्वामी वंशीअलीमहाराजजी की जो गुरु परम्परा है, उसमें वाईस (२२) नम्बर वाले मिश्रनारायणजी के विषय में श्रीशुकाचार्यजी के प्राधान्यता व महत्वत्ता में श्लोक दिया है वह यह है।

श्रीशुकाचार्यकृपया य आसील्लोक पावनः ।
श्रीभागवतमर्मज्ञो धर्मज्ञः शुद्ध भक्तिमान् ॥ १२ ॥

श्रीसमयप्रबंधपदावली, अलिबेलीअलीकृत ।

अर्थ-जो अर्थात् मिश्रनारायणजी श्रीशुकाचार्यजी के अनुग्रह से लोकपावन भया, और श्रीभागवत के मर्म को जानने वाला, धर्मको जानने वाला तथा शुद्ध भक्तिमान भया ॥ १२ ॥

इसी प्रकार श्रीवंशीअली के परमकृपापात्र श्रीजगन्नाथभट्ट जिन्होंका निकुंजसंबंधी नाम श्रीअलीकिशोरी है, उन्होंने भी अपनी अनुभव रचितबाणी में विस्तारपूर्वक श्रीशुकाचार्य महाराज के महत्वविषय में यह लिखा है।

पद–जय जय श्री शुकदेव व्यासनन्दनंदना ।
शुद्ध सच्चिदानन्द रूप सुख कन्दना ॥
श्री द्वैपायन ज्ञान ध्यान को फलमनों ।
प्रगटे अवनि अनूपम उज्वल रससनों ॥
जै जै श्री शुकदेव रंगिले भावई ।
सदा लडाई जोरी अति चित चावई ॥
रहत महल के माहिं रूप ह्वैके अली ।
करत निरन्तर गान गुनन को विधि भली ॥

छन्द–भलीबिधिसों गानकरि रिझई रसिकजीवनजरी ।
दिव्य श्री निजधाम में माधुर्य की बर्षा करी ॥
अमित सुखकी बेलि उलही कोउ भेवन पावई ।
जै जै श्री शुकदेव रंगिले भावई ॥ १ ॥

इस प्रसंगमें हम इस बातको भी प्रगट करते हैं कि शुकदेव कल्पान्तर भेद से चार हुये हैं, जिनकी गाथा इसतरह पर संसार में प्रसिद्ध है, कि–

(१) किसी कल्पमें दीर्घतपा नाम व्यासजी होते भये, जिन्होंने अपने पुत्रका नाम शुक रक्खा, शुकनाम रखने का कारन यह है कि कृष्ण नाम मिश्रित श्लोक वो बालक सुन्दर स्वरसे तात्काल उच्चारण करता ताते शुक नाम रक्खा, इन शुकमुनि की कथा संमोहन तंत्रमें उल्लेख है ।

(२) शुक किसीकल्प में श्री महादेवजी ने अमरकथा पार्वतीजी को श्रवण कराई, उस समय पार्वतीजी निद्रावश

होगई और वहां बटवृक्षमें एक शुक (तोता) हुंकार देताभया, अन्तमें वो श्रीशिवजी के भयसे भागता हुआ व्यासपत्नी के उदरमें प्राप्तहोके जन्म लेताभया, वेभी शुक नामसे इस जगत में प्रसिद्ध भये, इनकी कथा पुराणान्तर में मोजूद है।

(३) छाया शुकदेव ऋषी की कथा भागवत में इसतरहँ पर लिखी है कि इन्होंका विवाह होकर इनकी पत्नी से एक पुत्री प्रगट भई वो किसी ऋषी को विवाही गई।

(४) श्रीमद्व्यासनन्दन शुकदेव मुनिराज जिनकी कथा स्वयं वेदव्यासभगवान ने महाभारत शांतिपर्व मोक्षधर्म में वर्णन की है, इनही शुकमुनिराज ने श्रीमद्भागवत श्रीविष्णु अवतार वेदव्यास निजपिता से अध्ययन कर राजा परीक्षत को श्रवण कराके मोक्षपद पहुँचाया, ये शुकमुनि अरणीसंभूत अयोनिज प्रगट भये हैं, और अबके द्वापुरही में इनका प्राकट्य हुआ है, इन्होने ही कृपा करके श्रीश्यामचरणदासाचार्यजी को दर्शन देकर तथा विधिवत् गुरुदीक्षा प्रदान कर श्रीश्यामचरण-दासजी द्वारा अपनी शुकसंप्रदायको प्रगट प्रवर्तन कराया, और श्रीश्यामचरणदासाचार्यजी ने भी गुरुकृपा से शुकसंप्रदाय को संसार में संस्थापित किया, जो अब भी अनन्तजीवों को श्री भगवद्सन्मुख कर उद्धार कररही है, इन शुकदेव महाराज का जीवनचरित्र वेदव्यासप्रणीत इसतरहँ पर है, वो यहां पर वैष्णवों के समाधानार्थ लिखा जाता है॥

(भीष्मउवाच)

सलब्ध्वा परमंदेवा द्वरं सत्यवतीसुतः ।
अरणीसहिते गृह्य ममंथाग्निचिकीर्षया ॥ १ ॥

अर्थ—सत्यवतीसुत व्यासजी ने वरप्राप्त करने के पश्चात् एक समय अग्नी प्रगट करने की इच्छा से अरणी को मथरहे थे ।

अथरूपं परंराजन्बिभ्रतींस्वेनतेजसा ।
घृताचींनामाप्सरस मपश्यद्भगवान्हषिः ॥ २ ॥

उसी समय परमसौन्दर्य धारण कियेहुये घृताची नामा अप्सराको उन्हों ने देखा ॥ २ ॥

ऋषिरप्सरसं दृष्ट्वा सहसाकाममोहितः ।
अभवद्भगवान्व्यासो बने तस्मिन्युधिष्ठिर ॥ ३ ॥

ऋषि उस अप्सरा को देखकर हे युधिष्ठिर सहसा काम-मोहित होगये ॥ ३ ॥

साचदृष्ट्वातदाव्यासं कामसंविग्नमानसं ।
शुकीभूत्वा महाराज घृताची समुपागमत् ॥ ४ ॥

उस अप्सराने व्यासजी को कामातुर देखकर शुकी होकर के पास आई ॥ ४ ॥

सतामप्सरसंदृष्ट्वा रूपेणान्येनसंवृताम् ।
शरीरजेनानुगतः सर्वगात्रातिगेनह ॥ ५ ॥

उन्होंने उस अप्सरा को रूपांतर कीयेहुये देखकर के सब गात्रमे कामका संचार होनेलगा ।

सतुधैर्येणमहता निगृह्णन्हृच्छयंमुनि ।
नशशाकनियंतुंतद्व्यासःप्रविसृतंमन ॥ ६ ॥

वड़ेभारी धैर्यसे कामदेव को निग्रह करनेलगे किन्तु निग्रह नहीं करसके ॥ ६ ॥

भावित्वाच्चैव भावस्य घृताच्यावपुषाहृतः ।
यत्वान्नियच्छतस्तस्य मुनेरग्निचिकीर्षया ॥ ७ ॥

ऐसाही होनेवाला था इसकारण से घृताची के शरीर से जिनका आकर्षण हुआ है उस अपने आपको वडे यत्न से नियमन करने लगे और साथ ही अग्नि प्रगट करने की इच्छा से ॥ ७ ॥

अरण्यामेवसहसातस्यशुक्रमवापतत् ।
सोविशंकेनमनसा तथैवद्विजसत्तमः ॥ ८ ॥

अकस्मात् अरणीमें ही उनका शुक्र (वीर्य) पतन भया इनको इस बातका कुछ भी अनुसंधान नहीं रहा ॥ ८ ॥

अरणी ममंथ ब्रह्मर्षि स्ततयांयज्ञे शुकोन्टपः ।
शुक्रोनिर्मथ्यमाने स शुको यज्ञेमहातपाः ॥ ९ ॥

और अरणी को मथते रहे उससे उस यज्ञमें महान् तप रूप शुकदेवजी प्रगठ भये ॥ ९ ॥

परमर्षिर्महायोगी अरणीगर्भसंभवः ।
यथाध्वरेसमिद्धोग्निर्भातिहव्यमुदावहन् ॥ १० ॥

वे कैसे हैं परमर्षि महायोगी अरणी के गर्भसे उत्पन्न होने

वाले जैसे यज्ञके अन्दर प्रज्वलित अग्नी भासमान होती है १०

तथारूपःशुकोयज्ञे प्रज्वलन्निवतेजसा ।
विभ्रत्पितुश्चकौरव्यरूपवर्णमनुत्तमम् ॥ ११ ॥

अग्नी की तरहँ से तेजसे जाज्वल्यमान शरीर और पिता के समान रूपधारण कीयेहुये ॥ ११ ॥

वभौ तदा भावितात्मा विधूमइवपावकः ।
तं गङ्गासरितां श्रेष्ठा मेरुपृष्ठेजनेश्वर ॥ १२ ॥
स्वरूपिणी तदाभेत्य तर्पयामास वारिणा ।

उस समय धूआं करके रहित अग्नी की तरहँ भासमान होते भये उनको मेरूकी तरैटी में नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गास्वरूप धारण करके जलसे स्नान कराया ॥ १२ ॥

अंतरित्ताच्चकौरव्य दण्डःकृष्णाजिनं च ह ।
पपात भूमिराजेन्द्रशुकस्यार्थेमहात्मनः ॥ १३ ॥

आकाश से दंड और मृगचर्म महात्मा शुक के लिये पृथ्वी पर गिरे ॥ १३ ॥

जेगीयन्तेस्मगंधर्वा नन्टतुश्चाप्सरोगणाः ॥ १४ ॥

गन्धर्व और अप्सराओं ने नृत्यगान किया ॥ १४ ॥

देवदुंदुभयश्चैव प्रावाद्यन्तमहास्वनाः ।
विश्वावसुश्चगंधर्व.स्तथातुम्बरुनारदौ ॥ १५ ॥

देवताओं ने बड़ा जिनमें घोष है ऐसी दुन्दुभी (नगारे)

बजाये विश्वावसु गंधर्व और तुंबरू नारद ॥ १५ ॥

हाहाहूहूश्चगंधर्वौ तुष्टुवुःशुकसम्भवम् ।
तत्रशक्रपुरोगाश्चलोकपालासमागता ॥ १६ ॥

हाहा हूहू गंधर्वों ने स्तुतिकरी वहां इन्द्रादि लोकपाल देवता आये ॥ १६ ॥

देवादेवर्षयश्चैवतथाब्रह्मर्षयोऽपिच ।
दिव्यानिसर्वपुष्पाणि प्रववर्षचमारुतः ॥ १७ ॥

और देवर्षि ब्रह्मर्षी भी आये दिव्य सब प्रकारके फूलों की वर्षा करी ॥ १७ ॥

जंगमा जंगमश्चैव प्रहृष्टमभवज्जगत् ।
तं महात्मा स्वयं प्रीत्या देव्यासह महाद्युति ॥ १८ ॥

स्थावर और जङ्गम सब जगत हर्षायमान हुये फिर गिरिजा सहित महाद्युति महात्मा महादेवजी ने ॥ १८ ॥

जातमात्रं मुनेः पुत्रं विधिनोपायनत्तदा ।
तस्यदेवेश्वरः शक्रो दिव्यमद्भुतदर्शनम् ॥ १९ ॥

स्वयं बड़ी प्रीतिसे मुनि के पुत्रका विधिपूर्वक उपनयन संस्कार किया और इन्द्रने उस दिव्य अद्भुत दर्शन बालकको १९

ददौ कमण्डलुं प्रीत्या देववासांसिवाविभो ।
हंसाश्चशतपत्राश्च सारसाश्चसहस्रशः ॥ २० ॥

कमण्डलु और दिव्यवस्त्र अर्पण किये हंस शतपत्र सारस शुक नीलकण्ठादि अनेक दिव्य पक्षीगण ॥ २० ॥

प्रदक्षिणामवर्तंत शुकाश्चापाश्चभारत ।
आरणेयस्ततोदिव्यं प्राप्यजन्ममहाद्युतिः ॥ २१ ॥

प्रदक्षणा करनेलगे महाद्युतिमान् शुक मुनि अरणी से दिव्य जन्म प्राप्तकर ॥ २१ ॥

तत्रैवोवासमेधावी व्रतचारीसमाहितः ।
उत्पन्नमात्रं तं वेदा सरहस्या ससंग्रहाः ॥ २२ ॥

वहां ही बास किया और नैष्टिक ब्रह्मचारी होके रहे उत्पन्न होते ही वेद सहित रहस्य के और सहित संग्रह के ॥ २२ ॥

उपतस्थुर्महाराज यथास्य पितरं तथा ।
बृहस्पतिं च वव्रेसवेद वेदांगभाष्यवित् ॥ २३ ॥

उनके पिताकी तरहँ इनको भी स्वतः प्राप्त भये वेद वेदाङ्ग के भाष्य को जाननेवाले ॥ २३ ॥

उपाध्यायं महाराज धर्ममेवानुचिन्तयन् ।
सोऽधीत्यसकलान्वेदान्सरहस्यान्संग्रहान् ॥ २४ ॥

इन्होंने बृहस्पति को (गुरुकरना यह धर्म है ऐसा विचारके) उपाध्याय (गुरु) माना और समस्त वेदों को रहस्य और संग्रह के सहित ॥ २४ ॥

इतिहासश्चकार्त्स्न्येन राजशास्त्राणि वा विभो ।
गुरुवेदक्षिणादत्त्वा समावृत्तोमहामुनिः ॥ २५ ॥

और इतिहास तथा राजनीति शास्त्रों को उनसे पढा, गुरु को दक्षिणा देकर वहां से लौटे ॥ २५ ॥

उग्रंतपः समारेभे ब्रह्मचारी समाहितः ।
देवतानामृषीणांच बाल्येपिसमहातपाः ॥ २६ ॥

और ब्रह्मचारी रहकर उग्रतपस्या धारन की, बालकपनमें भी बडेभारी तपस्वी शुकमुनी देवताओं और ऋषियों को ॥ २६ ॥

संमंत्रणीयोमान्यश्च ज्ञानेन तपसा तथा ।
नत्वस्यरमतेबुद्धि राश्रमेषुनराधिप ॥ २७ ॥

ज्ञान और तप करके परम मान्य और सम्मति लेने के योग्य हुये और हे युधिष्ठिर! इनकी बुद्धि चारों आश्रमों में नहीं रमती थी अर्थात् आश्रमातीत अवस्था में रहनेलगे ॥ २७ ॥

इतिश्रीमहाभारते शांतिपर्वणिमोक्षधर्मे शुकोत्पत्ती चतुर्विंशत्यधिकत्रिशतमोऽध्याय (३२४) अध्याय भाषाटीका ॥

* आचार्य्य महत्व और लक्षण *

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७ ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशायच दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥ ८ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता ४ अध्याय ।

॥ भाषार्थ ॥

हे भारत! (हेअर्जुन) जब जब धर्म की ग्लानि (कमी वा न्यूनता) होती है अधर्म का अभ्युत्थान (प्राधान्य वा अधिकता) होता है तब (आत्मानं) अपने को वा आपको सृजामि (भेजताहूं वा प्रगट करता हूं वा अवतार लेताहूं) वा (आचार्य्यरूप अवतार लेताहूं) ॥ ७ ॥ साधुओं की रक्षा के लिये और दुष्कृतों (पापीयों वा असाधुओं व दुष्कर्मीयों) के नाश के लिये और धर्म की सँस्थापन (नियत) करने के लिये युग युग में (युगान्तर में) संम्भवामि स्वमेव होताहूँ वा अवतार लेताहूं (पूर्ण अवतार लेताहूं)।

साधारण बिचार से ये दोनों श्लोक श्रीभगवदावतार की पुष्टी के प्रमाण मानेजाते हैं और श्री कृष्ण का वचन बेदरूप प्रमाणीक है, परन्तु गम्भीर दृष्टि से देखने बिचारने से जानपड़ता है कि दोनों श्लोक दो प्रकारके अवतार को बतलाते हैं श्री कृष्ण संकेत से अवतार के भेद बतलारहे हैं, पाहिले श्लोक को गम्भीर बिचार से देखने पर भगवदाअवतार के ये हेतू पहले श्लोक से ये स्पष्ट जानपड़ते हैं।

(१) धर्म की ग्लानि (२) अधर्म का अभ्युत्थान, बेद, स्मृति, महाभारत, रामायण, श्रीमत्भागवदादिपुराणों से सिद्ध होता है कि जब जब ऊपर लिखित हेतुः सन्मुख आते हैं तब तब श्रीकृष्ण (१) आचार्य्य (२) ऋषि (३) उपदेशक (४) सम्प्रदायप्रचारक इत्यादि के रूप में अवतार लेते हैं, जैसा कि "आत्मानम् सृजाम्यहं" से श्रीकृष्ण बतलारहे हैं कि

मैं अपने आपको (आचार्य्य के रूप में) भेजताहूं वा प्रगट होताहूं वा अवतार लेताहूं।

इसी कारण से श्रीवेदव्यास, श्रीनारद, श्रीसनत्कुमार आदि श्रीशुखदेव, श्रीकृष्ण के आचार्य्यावतार हैं। धर्म, की ग्लानि और अधर्मका अभ्युत्थान (१) धर्म शिक्षा (२) आस्तिकता (३) उपासनामण्डन से दूर होता है और धर्म और भक्ति श्रीकृष्ण को परमप्रियहै इसलिये स्वयमेव ही किसी ऋषि वा आचार्य्य में कलारूप आवेशकर धर्म की संस्थापना करते हैं "तदात्मानम् सृजाम्यहम्" तब तब अपने आप को (आचार्य्यरूप) प्रकट वा आविशकार वा अवतार करताहूं। श्लोक के आदि में, "यदा यदा" दोबार कहने से श्रीकृष्ण बलात्कार से कहते हैं कि जब जब अर्थात युग वा मन्वन्तर वा किसी और कालावधिकी आवश्यकता नहीं है, उसी समय भगवत की कला आचार्य्य रूप अवतार लेती हैं, जिसभाव के संकेत से श्रीमद्भगवद्गीता में, कहरहें हैं उसीकोस्पष्ट रूप से श्रीमद्भागवत में कहा है।

आचार्य्यं मां विजानीयात् नावमन्येत कर्हिचित्
तमर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेव मयोगुरुः।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध श्लोक।

॥ भावार्थ ॥

आचार्य मुझकोही जाने और कुछकभी भी न माने और न मनुष्य बुद्धि से उनका अपमानकरे गुरु सर्वदेव मयी हैं, श्रीकृष्ण

आचार्य्य अवतार में साधूओं कि वाह्यरक्षा नहीं करते हैं, धर्म से ही रक्षा करते हैं, इसही रीति से प्रत्यक्ष रूपसे दुष्टों का नाश नहीं होता, परन्तु धर्मउपदेश और रसामृत वाणी से उनकी दुष्टताका नाश होजाता है, हमारी सम्मति में भगवान श्रीकृष्ण इस श्लोक से अपने आचार्य्यावतार का संकेत कररहे हैं।

दूसरे श्लोक से अपना पूर्णवतारहोना बतारहे हैं, इस में साधुओं की रक्षा और दुष्टों का नाश श्रीराम कृष्णादि की लीलाओं से विख्यात है।

"युगे युगे" कहने से कालावधि बतलाई गई है पूर्णावतार युग के अन्त में हुवाकरता है श्रीरामावतार त्रेता के अन्त में हुआ, श्री कृष्णावतार का समय द्वापर का अन्त है, कल्कि अवतार भी कलि के अन्त में होगा। पहले श्लोक से आचार्य्यावतार की सिद्धि होचुकी। श्रीभगवानवेदव्यास, श्रीकृष्ण के अंशावतार हैं वेदों का संग्रह किया और श्रीमन्महाभारत को रचा और श्रीमद्भागवतादिअष्टादश पुराण रचे, श्रीनारद ने नारदपञ्चरात्र रचा और भक्ति का सर्वत्र सर्वदा उपदेश किया, श्रीसनकादि चतुर कुमारों ने भी संहिता रची, इसी रीति से श्रीमानमहर्षियों ने श्री भगवतकला वेश होकर धर्म प्रचारकीया, श्रीमनु, याज्ञवल्क, पराशर, इत्यादि स्मृतिकार हैं श्रीस्मार्त संप्रदाय के प्रचारक श्री शङ्कराचार्य्य श्री शिवका अवतार हैं, श्रीरामानुजाचार्या श्री शेष का अवतार हैं, श्री माधवाचार्य भी श्रीकृष्ण कलावतार हैं, श्री निम्बार्काचार्य्य श्रीसुदर्शनावतार हैं, श्रीचेतन्यमहाप्रभू भी श्री कृष्ण का आवेशावतार हैं, श्रीहितहरिवंशस्वामी श्री वंशीकाअवतार हैं,

और महात्मा जिन्होने अपने उपदेश से जगदुद्धार किया, सब में श्रीकृष्ण की कला विराजमान है।

इस से सिद्ध होता है के सम्प्रदाय के आचार्य्य वा धर्म प्रचारक श्रीकृष्ण के अंशावतार वा कलावतार वा आवेशावतार हैं। इसही कारण श्रीशुकसम्प्रदाय के मूल आचार्य्य श्रीशुकदेव भगवान और पृवर्तक आचार्य्य श्री श्यामचरणदासाचार्य्य श्रीकृष्णवतार हैं और श्रीकृष्ण तुल्य पूज्यनीय हैं आचार्य्य के लक्षण ये हैं।

श्रीमत्द्वैपायनभगवानवेदव्याससुयश प्रतापवर्णन।

पहले कल्पान्तरों में जो वेदव्यास प्रगट हुवे हैं उन्हों की शास्त्रों में ऋषियों में गणना कीगई है, अर्थात् ऋषिरूप वेदव्यास हुवे हैं और श्रीमत् पराशर पुत्र द्वैपायन भगवान् वेदव्यास चौबीस अवतारों में गणना कियेगये हैं, जिन के परत्व प्रमाण यह हैं।

जयतिपराशरसूनु सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः।
यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतंजगत्पिबति ॥१॥

पराशरजी के पुत्र सत्यवती के हृदयको आनन्द देनेवाले ...रजी की जै हो, जिनके मुखकमल से निकली हुई वाणीरूपी ...ृत जगत् पान करता है।

नमोस्तुतेव्यासविशालबुद्धे फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र।
येनत्वयाभारततैलपूर्णः प्रज्वालितोज्ञानमयःप्रदीपः॥

हे विशालबुद्धि व्यासजी आपको नमस्कार करताहूं आप के नेत्र फूले हुए कमल के सदृश विशाल हैं, आपने महाभारत रूप ज्ञानदीपक प्रज्वलित करादिया है।

व्यासायविष्णुरूपाय व्यासरूपायविष्णवे।
नमो वैब्रह्मविधये वाशिष्ठायनमो नमः॥ ३॥

विष्णुरूप व्यासजी और व्यासरूप विष्णु वशिष्ठ के गोत्र में उत्पन्न होनेवाले उनको मैं बारम्वार नमस्कार करताहूं।

अचतुर्वदनोब्रह्मा द्विबाहुरपरोहरिः।
अभाललोचनःशम्भुर्भगवान्बादरायणिः॥ ४॥

भगवान् वेदव्यास एकमुखवाले ब्रह्मा, दोभुजावाले विष्णु, भालदेश में लोचन रहित शम्भू हैं।

व्यासंवशिष्ठनप्तारंशक्तेःपौत्रमकल्मषम्।
पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम्॥ ५॥

वशिष्ठ के प्रपौत्र शक्ति के पौत्र पराशर के पुत्र शुकदेव के पिता तप की निधि व्यास को बारम्वार नमस्कार करताहूं।

इनही श्रीमत् वेदव्यास भगवान का प्राकट्य आषाढ शुक्ल पूर्णिमाको भूमण्डल में हुवाहै, जगद् गुरु भगवान् वेदव्यासाचार्य्य का सर्व जगत् में समस्त संप्रदाई महानुभाव श्रीगुरु पूर्नो के नाम से अत्यन्त भावभक्ति के साथ निज निज मंत्रउपदेष्टा दीक्षाप्राप्त श्री गुरुदेवजी का विधिपूर्बक पूजन करते हैं, ये खास श्रीमद्वेदव्यास भगवान् के जन्मदिन का महोत्सव है ।

ममजन्मदिनेसम्यक् पूजनीयः प्रयत्नतः ।
आषाढ शुक्ल पत्ते तु पूर्णिमायां गुरौ तथा ।
पूजनीयो विशेषेण वस्त्राभरणधेनुभिः ।
फलपुष्पादिनासम्यक् रत्नकांचनभोजनैः ।
दक्षणाभिस्सुपुष्टाभि र्मत्स्वरूपंप्रपूजयेत् ॥

(ब्रह्माण्डपुराणे श्रीवेदव्यासवाक्यम्)

मेरे जन्मदिन को सम्यक्प्रकार मेरी पूजाकरे, जिस दिवस को पूर्णिमा आषाढ शुक्लपक्ष व बृहस्पतिवार हो वस्त्र, आभूषण, धेनु, फल, पुष्प, रत्न, सुवर्ण आदि भोग दक्षिणा आदि से मेरी मूर्त्ती की पूजन करे ।

॥ वार्त्तिक ॥

पराशरात्मज श्रीमती सत्यवती माता के पुत्र श्रीमत् भगवान् बादरायणी वेदव्यासजी महाराज ने पंचम वेदरूप महाभारत की रचना करी, जिसमें चारवर्ण और चारों आश्रमों

के धर्मों को विस्तारपूर्वक कथन कर लोक परलोक की सिद्धि प्राप्ती को सुलभ करदिया और सूत्रों की रचना करके अज्ञानरूपी अंधकारको मिटादिया और वेदविरोधी मतवादियों के मतको दूरकरदिया और अपनी दिव्यदृष्टि के प्रभावमात्र से ही धृतराष्ट्र पांडू और विदुरजी को उत्पन्न करदिया और अर्जुन ने श्रीवेदव्यास महाराज के परमप्रभाव बलसे ही स्वर्ग में जाकर महास्त्रविद्या को भलीप्रकार प्राप्त कर कौरव सेनाको शीघ्र जीत लिया, युद्ध के वृत्तान्त जानने की इच्छा से धृतराष्ट्र ने याचना की तब श्रीव्यासभगवान् ने संजय को दिव्यदृष्टि दानकर धृतराष्ट्र का मनोरथ पूर्णकरदिया, बनमें निवास करनेवाले धृतराष्ट्र और गान्धारी को पुत्रों के शोक में दुखी देखकर श्री वेदव्यासजी ने मरेहुवे पुत्रों का दर्शन कराकर मोहजनित दुःख दूर करदिया। और महाभारत रचनाकरने के पश्चात् वेदोंका सार तत्वफल स्वरूप श्रीमद्भागवत पर महंससंहिता महापुराण अठारह हज़ार श्लोक कथनकर संसार समुद्र को सुगमरीति से तर परमधाम पहुंच-जाने के अर्थ नौका बनाकर और अपने पुत्र श्रीशुकमुनिराज को भागत पढाकर कर्णधार बनादिया, श्रीशुकाचार्य नें परमभक्त राजराजा परिक्षित को सातही दिन श्रीमत्भागवत श्रवणकरा-कर परमधाम पहुंचाकर श्रीभागवत का पूर्णरूप से जक्त में प्रचार करदिया, जिस के श्रवण पठन से अनंत जीव जन्म मरण रूपी बंधन से मुक्त होकर परमपद को जारहे हैं और सदैव जातेरहैंगे ॥

॥ वार्ता ॥

श्रीमद्वेदव्यास भगवान् जिन्हों ने सर्व वेदों का सार सिद्धान्त रूप श्रीमद्भागवत महापुराण को रचकर जगत में प्रसिद्ध किया ए वेदव्यास स्वयम् श्री विष्णु भगवान् ही प्रगट हुवे हैं इसके प्रमाण में श्री विष्णु पुराणमें श्री पराशर मुनि वाक्य यहां पर लिखाजाता है।

ततोऽत्र मत्सुतोव्यासः अष्टविंशतिमेऽन्तरे ।
वेदमेकं चतुष्पादं चतुर्धाव्यभजत्प्रभुः ॥ १ ॥

मेरेपुत्रव्यास अठाइसवें अन्तर (चोकडी) में प्रकट होकर एक वेद के चारभाग करें गे (यह पराशरजी का वचन है, ।

कृष्णद्वैपायनं व्यासंविद्धिनारायणप्रभुम् ।
कोऽन्योहिभुविमैत्रेय महाभारतकृद्भवेत ॥

इति षटसंदर्भ पृष्ठ संख्या १०

कृष्ण द्वैपायनव्यास को नारायणप्रभूजानों क्यों कि और दूसरा महाभारत बनानेवाला कोन होसक्ता है ।

॥ टीकाकारवाक्यम् ॥

ततोऽत्रमत्सुतइत्यादौचव्यासान्तरेभ्य ।
पाराशर्य्यस्येश्वरत्वात् महोत्कर्षः इति ॥

पराशर ऋषिपुत्र श्रीबेदव्यासजी ईश्वर होने से अन्ययुगगत व्यासों से श्रेष्ठ हैं इस जगह द्वैपायन जो विशेषण है, सो दूसरे व्यासों से पाराशर्य व्यास को प्रथक (अलग) करके उनमें ईश्वरताको सिद्ध करता है और अंन्य व्यासों मे तदं शत्व सिद्ध करता है ।

द्वैपायनेनयद्बुद्धं ब्रह्माद्यैस्तन्नबुध्यते।
सर्वबुद्धं सर्ववेदतद्बुद्धं नान्यगोचरः ॥
(पद्मपुराण वाक्यं)

बेदव्यासजी ने जो जाना सो ब्रह्मादिकों ने नहीं जाना और सब जो कुछ जानते हैं वो व्यासजी सब जानते हैं किंतु व्यासजी ने जो जाना वो किसी ने नहीं जाना।

श्रीमतशुकाचार्य्य सर्वमान्यसर्वपूज्यहैं

कृष्णावतार संभूतं श्रीशुकं प्रणमाम्यहम् ।
सकलाचार्य्य पूज्यंच मन्त्रराज प्रचारकं ॥ १ ॥

॥ दोहा ॥

श्रीशुकपदसुप्रणाममम, स्वयम् कृष्णअवतार।
सकलाचारज पूज्यप्रभु, मन्त्र प्रचारनहार ॥ २ ॥

॥ कवित्त ॥

धन्य बैशाख मास मावस तिथि सुखकी रास धन्य सोमवार सर्व सुरनर मुनी जान्यों है। प्रगट भये स्वयम् कृष्ण, मुनिको सरूपधार बेदव्यास को कुमार ऋषिनकहि बखान्यों है ॥ बैसहै किशोर चितचोर रसिक चूड़ामणि मुनिनमांहि महामुनि संतन पिछान्यों है । कहै सरसमाधुरी सुअङ्गश्याम सुखको धाम शुकाचार्य्य सर्वपूज्य मेरे मन मान्यों है ॥ ३ ॥

॥ कवित्त ॥

प्रगटे अयो निजनहि आये गर्भमाता के होम अग्निकुण्ड द्वार

दरस दिखायो है । जन्मत जिन जीतलई मायाविनही प्रियास स्वयम् सुइच्छा मयरूप दरसायो है ॥ थिर चर सुरनर मुनीश मुदितभये दरशनकर परमतेज तरुणसम त्रिभुवन में छायो है। कहै सरसमाधुरी शुकदेव के प्रतापसेती सुखही सुख समायो दुक्खजगत को नशायो है ॥ ४ ॥

॥ कवित्त ॥

प्रगट जो न होते शुकदेव आप भूतल में कोन श्रीकृष्ण जूके गुणगण गावतो । प्रेमपरा भक्ति महारानी की माहिमां को सर्वोत्तम भाव जक्तमांहि को जनावतो ॥ गोपिनके प्रेमकी प्रशंसा सवविश्ववीच ऐसो और कोन हो सो सवनको सुनावतो । कहै सरसमाधुरी रहस्य केलि कुंज ललित दिना मुनिराज नही जीवको ऊपावतो ॥ ५ ॥

॥ सवैया ॥

श्रीसुखदेव दयाल से दूसरे देखे सुनेनही और मुनी हैं । त्यागी विरागी तपश्वी अनेकन जोगी जपी वहुज्ञानी गुनी हैं ॥ माया ठगी सवकी मतिको मुनिराज बचे यशगावे दुनी हैं । याहिते सर्स भये भवमें महिमां वहुभांति कवी न भनी हैं ॥ ६ ॥

॥ पद ॥

जो शुक मुनिनांही प्रगटा तो । तो फिर कोनभागवतरसकी सरिता त्रिभुवन मांहि वहातो ॥ प्राणवल्लभा व्रजगोपिन की प्रेमकथा को कोअस गातो । वृंदावन की सहज माधुरी ताकी महिमां कौन सुनातो ॥ पराभक्ति पथ अगम अगोचर ताको

मारग कोन बताता । रंगमहल की टहल सहल ही रसिक सहज कोऊ नहि पाता। परम दयाल दीन हितकारी दम्पति जस कहिको दुलराता ॥ सरसमाधुरी जुगलचरण की शरण सुखद में कोउन आतो ॥ ७ ॥

॥ पद ॥

रस निकुंज शुकमुनि प्रगटायो ॥ रस० ॥ टेर ॥ सबतें प्रथम सुगम कहि बरनों ता पाछै बहु रसिकन गायो ॥ रस० ॥ ज्यों भागीरथ भरतखण्ड में निज पुरुषारथ गङ्गा लायो ॥ रस० ॥ पुनि पुहमींमें प्रथक २ कर घाट २ बहु नाम धरायो ॥ रस० ॥ प्रीतिसहितभरलियो पात्रजिन गङ्गोदक ताकोकहलायो ॥ रस० ॥ आस्वादन कीनोरङ्गभीनो सुयशसकल लोकनमेंछायो ॥ रस० ॥ शुकमुखकथितसर्बपरकहियतऐसोकोनजाहिनहिभायो ॥ रस० ॥ सरसमाधुरी रसिकाचारजचरणदास सोई सतगुरुपायो ॥ रसनिकुंजशुकमुनि० ॥ ८ ॥

॥ पद ॥

श्रीशुकदेव सुयश जग छायो ॥ श्रीशुक० ॥ टेर ॥
जोग जज्ञ तीरथ ब्रत संजम सबको सार प्रेम दरसायो ॥ श्री० ॥
नाम धाम लीलास्वरूप गुन कृपादृष्टिकर सबनसुनायो ॥ श्री० ॥
बृजवृंदाबन श्रीयमुना यश रजरानी को रूप लखायो ॥ श्री० ॥
वर्णनकियो अनूप महातम जिनको गायो सबहिनगायो ॥ श्री० ॥
आचारज सिरमोर महाप्रभु संतन रसिकनके मनभायो ॥ श्री० ॥
शुकमुख कथित कथा सरवणकर नृपति परिक्षित हरि पदपायो ॥

सरसमाधुरी के मनमांहीं शुकमुनि रूप अनूप समायो ॥
श्रीशुकदेव सुयश जग छायो ॥ १ ॥

(श्रीमत् वल्लभाचार्य महाराज सम्प्रदाय मुकुटमणि
अष्टसखा भाव अग्रगंन्य श्रीमत नन्ददासजी रचित
श्रीमत् शुकाचार्य महाराज वन्दनात्मक पद।)

॥ पद ॥

जिहिं भीतरि जगमगत निरन्तर कुँवर कन्हाई ॥ ९ ॥
सुन्दर उदर उदार रोमावलि राजत भारी ।
हिय सरवर रसभरी चली मानों उमगि पनारी ॥ १० ॥
ता रसकी कुण्डिका नाभि शोभित अस गहरी ।
त्रिवली तामें ललित भांति जानों उपजत लहरी ॥ ११ ॥
अतिसुदेश कटिदेश सिंह घन बन शोभित अस ।
जोबन मद आकरसत बरसत प्रेम सुधारस ॥ १२ ॥
गूढजानु आजानु बाहु मद गजगति लोलैं ।
गंगादिकन पवित्र करन अवनी में डोलैं ॥ १३ ॥
सुंदर पद अरबिंद मधुर मकरंद मुक्ति जहां ।
मुनि मन मधुकर निकर सदा सेवत लोभी तहां ॥ १४ ॥
जब दिनमणि श्रीकृष्ण दृगन तें दूरभये दुर ।
पसरिपरयो अँधियार सकल संसार घुमडि घुरि ॥ १५ ॥
तिमर ग्रसित सब लोक ओक दुख देखि दयाकर ।
प्रगट कियो अद्भुत प्रभाव भागवत दिवाकर ॥ १६ ॥
जे संसार अँधियार अगार में मगन भयेनर ।
तिनहित अद्भुत दीप प्रगट कीनो जु कृपाकर ॥ १७ ॥
श्री भागवत सुनाम परम अभिराम परम मति ।
निगम सार श्रुति सार विना गुरु कृपा अगम गति ॥ १८ ॥
ताही में मणि अति रहस्य यह पंचाध्याई ।
तन में जैसें पंचप्रांण अस शुक मुनिगाई ॥ १९ ॥
परम रसिक इक मित्र मोहि तिन आज्ञा दीनी ।
ताही तें यह कथा यथा मति भाषा कीनी ॥ २० ॥

॥ दोहा ॥

शुकमुनि रूप अनूप है, कहा बरनें कविनन्द ।
अब बृंदावन बरनि हों, जहाँ बृन्दावन चन्द ॥ २१ ॥

॥ पद ॥

मुनि सबलोक पावन करे । प्रगट श्री भागवत कीनो करुणा सागर ढरे । लाय भागीरथ सुरसरी पाप पूर्वजहरे । तुम जु सबजग उर भवन में भक्ति दीपकधरे । कृष्ण चरित बिचित्र रसमद प्रेम सागर भरे । सहज श्रीशुक चरण नवका दास नागर तरे ॥२२॥

जै जै श्रीशुकमुनि मतवारे । कृष्ण रूप गुनमत्त बारुणी उनमीलत दृगभारे । सीतल सुखद प्रसन्न वदनविधु लखि हिय मिटत अंध्यारे । जगमगात नवकान्ति माधुरी प्रेमपुंज उजियारे । विचरत करत पुनीत तीरथन अगनित जीव उधारे । अवकरि कृपा दास नागर कहै मेटो ताप हमारे ॥ २३ ॥

जै जै जै श्रीशुकमुनिदेवा । परमहंस संहिता गाई जुगल रूप सेवनकी टेवा । श्रीवृन्दावन वास अखण्डित सहचारि वपु धारि कीनी सेवा । किशोरी अली श्रीवनरज मांगत छुन्यों चहत दम्पति को भेवा ॥ २४ ॥

नमो नमो शुकमुनि मतवारे । डोलत छके अवनिपर सुंदर गौर श्याम उर अन्तर धारे । नित्य किशोर छवीले अङ्ग अङ्ग अति सरूप नैंना रतनारे । नृपति सभा में आय गाय जस किशोरी अगनित जन प्रतिपारे ॥ २५ ॥

॥ श्रीशुकाचार्य्य जन्म बधाई परत्व, पद ॥

जन्मोत्सव मङ्गल दिन आली अति उत्तम मन भायोरी। श्रीमतवेदव्यास जगत गुरु सुत शुक मुनि प्रगटायोरी ॥ १ ॥ गगनबरन मनहरन करन सुख आचारज ह्वै आयोरी। स्वयम् प्रकाश सच्चिदानंद घन तेज तरुण सम छायोरी ॥ २ ॥ त्रिभुवन को तम दूर करन करुनासागर उपजायोरी। रसिककञ्ज दरशन कर फूले लख लोचन सुखपायोरी ॥ ३ ॥ मुनिजनजुरे महोत्सव कारन हिलमिल लाडलडायोरी। गुनि गन्धर्व अप्सरा आदिक नृत्यगान सरसायोरी ॥ ४ ॥ ऋषिपत्नी रचिधरे साथिये मोतिन चौक पुरायोरी। ध्वजा पताका तोरन रोपे सुन्दर साज सजायोरी ॥ ५ ॥ वंदनवार द्वारप्रति बांधी सुरुचि सोहिलो गायोरी। कुलकी रीति प्रीतयुत कीनी सुखसमुद्र उमगायोरी ॥ ६ ॥ पशुपक्षी सरवर अरु तरवर बन उपवन सुखछायोरी। विधि शिव शेष सारदा सुरपति सुरसमूह चलिआयोरी ॥ ७ ॥ मागधसूत भाट बंदीजन सुंदर बिरद सुनायोरी। जै जै बोल विविधि भांतिनसों बचनामृत बरषायोरी ॥ ८ ॥ कोउ कहै यह श्रीशुक आली मुनिवर रूप बनायोरी। रस पद्धति के प्रगट करन हित दंपति इन्हैं पठायोरी ॥ ९ ॥ कोउ कहै यह निकुंज को सूवा मनुज होय दरसायोरी। गुप्त निकुंज केलि रस रसिया रसिकन के हित लायोरी ॥ १० ॥ कोउ कहै कीर प्रिया बेसर को लागत परम सुहायोरी। मोहन मानों मुनि बनिआयो सो हमरे मन भायोरी ॥ ११ ॥ कोउ कहै आप

कृष्ण करुणा कर सन्त रूप दरसायोरी । करन परायन नृपति परिक्षित दरशन आन दिखायोरी ॥ १२ ॥ कोउ कहै महापुरान भागवत प्रगट करनको धायोरी । सुन गुन लहैं निकुंज महल सुख कलि जिय हेत जनायोरी ॥ १३ ॥ कोउ कहै वेदव्यास तपको फल साक्षात दरसायोरी । गुरु मुनियनको महामुनिश्वर निश्चै नैन लखायोरी ॥ १४ ॥ कोउ कहै यह श्रृङ्गारमूर्ति है श्याम तेज तन पायोरी । रसिकन जीवनप्रान परमधन छबि लखि हिये बसायोरी ॥ १५ ॥ कोउ कहै गौर श्याम रङ्गरेनी उज्वल रस उमगायोरी । सोई प्रगटो भूतल भागनवत प्रेमचन्द्र झलकायोरी ॥ १६ ॥ कोउ कहै स्वसुख ब्रजबनितन को नरबर ठाठ बनायोरी । कोउ कहै तत्सुख नवनिकुंज को यों सुखनाम धरायोरी ॥ १ ॥ कोउ कहै कुंज सभाको मण्डन सोई आ मनुज कहायोरी । श्रीहरि धर्मध्वजा अस्थापन इन दृढ नेम धरायोरी ॥ १८ ॥ कोउ कहै निगम कल्पतरु तोता दम्पतिरस फल खायोरी । सोई फल श्रीभागवत तोरधर पटक सन्त त्रपतायोरी ॥ १९ ॥ कोउ कहै युगललाल सैया सुख उमग चलो अतुरायोरी । नवनिकुंज सें निकसि रूपधरि भावक हृदय बसायोरी ॥ २० ॥ कोउ कहै भाजन युगबिहार रस अति उज्वल सुभरायोरी । भक्त अनन्य रसिक चसकनको हिय संपुट भरलायोरी ॥ २१ ॥ रूपअमित धर रसिकजननको युग युग माँहि छकायोरी । कलिमल हरन करन पावनजग त्रयबिधि ताप नसायोरी ॥ २२ ॥ भक्तिबिराग जोग जप संजम हरिमारग सुखमायोरी । किये कृतारथ जीव जगतगुरु अविचल धाम

बसायोरी ॥ २३ ॥ शरणागत जन रक्षक स्वामी वेदपार नहिं पायोरी । नित्यविहारी नाम धाम लीला स्वरूप लोलायोरी ॥ २४ ॥ सर्व पूज्य सर्वेश्वर सद्गुरु हृदय ध्यान धर, ध्यायोरी । सरसमाधुरी महाप्रभुमन निसदिन मोर समायोरी ॥ २५ ॥

अथ बिहङ्गमगति श्रीशुकाचार्य्य मुक्तिमार्ग तथा पिपीलिकागति बामदेव मुक्तिमार्गरहस्य श्रीकृष्ण यजुर्वेदीय बराहोपनिषदि चतुर्थोध्यायवर्णन !

शुको मुक्तो बामदेवोऽपि मुक्त
स्ताभ्यांबिनामुक्तिभाजो नसन्ति ।
शुकमार्गं येऽनुसरन्ति धीराः
सद्योमुक्तास्ते भवन्तीह लोके ॥ ३४ ॥

शुक मुक्त और वामदेव भी मुक्त इन दोनों के बिना मुक्ति-मार्ग और नहीं है, जो धीर पुरुष श्रीशुकाचार्य्य मार्गको ग्रहण करते हैं वह इस लोकमें सद्य (जल्दी) मुक्ति पाते हैं ॥ ३४ ॥

वामदेवं येऽनुसरन्ति नित्यं
मृत्वाजनित्वाचपुनः पुनस्तत् ।
तेवैलोके कर्ममुक्ताभवन्तियोगैः
सांख्यैः कर्मभिः सत्वमुक्तैः ॥ ३५ ॥

वामदेवमार्ग को जो पुरुष ग्रहण करते हैं वह नित्य (बारम्बार) जन्मते मरते कर्मयोग और ज्ञानयोग द्वारा अन्तः करण शुद्ध होकर क्रम मुक्ति (कायदे के साथ) मुक्त होते हैं ३५

शुकश्चवामदेवश्च द्वेसृतीदेवनिर्मिते ।
शुकोविहङ्गमप्रोक्तावामदेवःपिपीलिका ॥ ३६ ॥

शुकमार्ग और वामदेवमार्ग येही दो मुक्तिमार्ग परमात्मा के निर्माण किये हैं, शुकमार्ग "विहङ्गगति" और वामदेवमार्ग "पिपीलिकागति" कहाजाता है ॥ ३६ ॥

अतश्चावृत्तिरूपेण साक्षाद्विधिमुखेनवा ।
महावाक्यविचारेण सांख्ययोगसमाधिना ॥ ३७ ॥
विदित्वास्वात्मनोरूपं संप्रज्ञातसमाधितः ।
शुकमार्गेणविरजाः प्रयान्तिपरमंपदम् ॥ ३८ ॥

भगवतकृपासे प्राप्त सहजानुरागसे अथवा विधिमार्गसे महावाक्यके विचारपूर्वक ज्ञानयोग समाधिसे अथवा सम्प्रज्ञात समाधी "युगल श्रीप्रिया प्रीतमके ध्यान" द्वारा आत्मस्वरूपको साक्षात करके रजोगुण, तमोगुण रहित शुद्ध होकर श्रीशुकमार्ग द्वारा पुरुष परमपद जाते हैं ॥ ३७-३८ ॥

यमाद्यासनजायास हठाभ्यासात्पुनः पुनः ।
विघ्नबाहुल्यसंजात अणिमादिवसादिह ॥ ३९ ॥
अलब्ध्वापिफलंसम्यक् पुनर्भूत्वामहाकुले ।
पूर्ववासनयैवायं योगाभ्यासंपुनश्चरन् ॥ ४० ॥
अनेकजन्माभ्यासेन वामदेवेनवैपथा ।
सोऽपिमुक्तिसमाप्नोति तद्विष्णोःपरमंपदम् ॥ ४१ ॥

यमनियमासन प्राणायामादि अष्टाङ्गयोगरूपी परिश्रम से

हठपूर्वक बारम्बार अभ्यास करते २ विघ्नों के अधिकतासे और अणिमादिअष्टसिद्धि के वशमें होनेसे भगवत् प्राप्ति रूप फलको नहीं प्राप्त होकर पहले जन्मके बासनासे फिर योगाभ्यास करते करते अनेक जन्म के अभ्याससे बामदेवमार्ग "पिपीलिकागति" द्वारा पुरुष परमपद श्रीवैकुण्ठधाम प्राप्त होते हैं ३१-४०-४१

द्वाविमावपिपन्थानौ ब्रह्मप्राप्तिकरौशिवौ ।
सद्योमुक्तिप्रदश्चैकः क्रममुक्तिप्रदःपरः ।
अत्रकोमोहकःशोकः एकत्वमनुपश्यतः ॥ ४२ ॥

परब्रह्मपरमात्मा के प्राप्ति करानेवाले यही दो मार्ग मङ्गल रूप हैं जिसमें श्रीशुकाचार्य्यमार्ग सद्यमुक्ति देनेवाला है, चेतना चेतन समस्त जगतमें अपने इष्टदेव युगलसरकार को शाक्षात् करनेवाले महानुभावों को शोक, मोह नहीं होता ॥ ४२ ॥

यस्यानुभवपर्यन्ता बुद्धिस्तत्वेप्रवर्त्तते ।
तद्दृष्टिगोचराःसर्वे मुच्यन्ते सर्वपातकैः ॥ ४३ ॥

जिस महात्मा के तत्व साक्षात्पर्यंत बुद्धि पहुंची हुई है, ऐसे ब्रह्मवेत्ता महानुभावों के दृष्टि पड़ने से जीवमात्र सम्पूर्ण जन्म मरण रूप संसार से छुटकर मुक्त होजाते हैं ॥ ४३ ॥

खेचराभूचराःसर्वे ब्रह्मविद्दृष्टिगोचराः ।
सद्यएवविमुच्यन्ते कोटिजन्मार्जितैरघैः ॥ ४४ ॥

खेचर (आकाशमें विचरनेवाले जीव) भूचर (पृथ्वी में विचरनेवाले जीव) सम्पूर्ण प्राणीमात्र ब्रह्मवेत्ता (भागवत अर्थात् भगवत भक्त)

के दृष्टि (कृपापूर्वक देखने मात्रसे) सैकड़ों जन्मों के संचित पापसे छुटकर तत्काल मुक्त होजाते हैं ॥ ११ ॥

शेषवक्तव्य ॥ जब ब्रह्मवेत्ता के दृष्टिमात्र सम्बन्धसे जीव मुक्त होते हैं तो ब्रह्मवेत्ताओं में अग्रगण्य श्रीशुकाचार्य्यजी महा मुनिराज के साक्षात उपदिष्ट सम्प्रदाय (मार्ग) में जो महानुभावजन हैं उन लोगों को सर्व बन्धनसे छुटकर श्रीयुगल सरकारके चरणारविन्दकी नित्यसेवा प्राप्ती होने में तो कुछ संदेह ही नहीं है (तात्पर्यार्थ) यह है कि भवबन्धनसे छूटि भगवत पदप्राप्ति होने के दो मार्ग हैं । एकतो बिहङ्गमार्ग श्रीशुकाचार्य मार्ग कहाता है । दूसरा पिपीलिका मार्ग वामदेवमार्ग कहाता है सो परमोत्तम विहङ्गमार्ग की ऐसी रीति है कि जैसे पक्षी एक वृक्षपर बैठाहुवा दूसरे वृक्षपर जानेकी चेष्टा करे जबचाहे तबही वृक्षपरसे उडिके दूसरे वृक्षपर निर्विघ्न निःसंदेह जाबैठता है, अर्थात् इस स्थूल देहमें जीवरूपी विहङ्ग जिस धाममें जिस रूपमें मन और श्रुति लगाता है शरीर छोडकर अनायास ही स्वमनोरमधाम को वह जीव अतिवेगसे प्राप्तहोजाता है । शरीर रूपी वृक्षको त्यागि परमपदरूपी वृक्षपर जाबैठता है जगत जंजालसे विमुक्त होकर सहज में ही परम्पदका परमोन्नत रसात्मक सुख प्राप्त करलेता है । (प्रमाण)

॥ दोहा ॥

जाकी सुरति लगी है जहां, कहै कबीर सोइ पहुंचै तहां ॥ १ ॥

अन्योक्तिप्रमाण (चौपाई)

जाकोमन अटके जेहि धामा । ताहिपरापति सो परिनामा ॥२॥

इति श्रीकृष्णयजुर्वेदीय वराहोपनिषदि चतुर्थोऽध्यायः ।

(वार्ता)

श्रीमत श्यामचरणदासाचार्य महाराजने श्रीशुकमुनिराज महाराजकी कृपासे पिपील और बिहङ्ग दोनों मार्ग प्राप्त और सिद्ध करलिये और यथा अधिकार जैसा जीव समझा उसको वैसाही मार्गका उपदेश करके परमधाम प्राप्ति का अधिकारी बना परमपद में पहुंचादिया प्रमाण दोहा–

ज्ञान भक्ति अरु योगका, घटलेवें पहचान ।
जैसी जाकी बुद्धिहो, सोइ बतावे ध्यान ॥ १ ॥
दोनों मारग देखिया, बिहङ्गम और पिपील ।
पहुंचे तुरिया देशमें, नेक न कीन्ही ढील ॥ २ ॥

सर्वोपरि प्रेमाभक्ति बिहङ्गमार्ग ही कहाजाता है उसही की पूर्ण प्रशंसा व महिमा श्रीमहाराजने श्रीमत भक्तिसागर ग्रन्थमें सर्वोत्तम वर्णन करी है । इति

(वार्ता व्याख्या)

श्रीमद्भागवत महापुराण परमहंस संहिता श्रीमद्वेदव्यास भगवान प्रणीत पर चार सम्प्रदा के मुख्य आचार्य्यों ने तथा अन्य महानुभावो ने ५२ बावन टीका करी हैं, टीका के प्रारंभ में श्रीवेदव्यासजी और शुकाचार्य्य महाराज की महिमा तथा वंदनात्मक सुन्दर श्लोक रचना किये हैं विस्तार भय सें प्रमाण रूप कुछ श्लोक रसिक पुरुषों के अवलोकनार्थ नीचे लिखे जाते हैं ॥

आर्यं धर्मजमाह तारीमवनौ कृत्वापरीक्षिन्नृपं ।
ब्रह्मास्त्रादभिरक्षितं कलिजय ख्यातंच कृत्वाभुवि ॥
अंतेयः शुकरूपतः स्वपरम ज्ञानोपदेशे नतं ।
शापादावदमुंनमामि परमानन्द कृतिंमाधवम् ॥ १ ॥

श्रीमद्भागवत् प्रथमस्कंधांते श्रीधर स्वामि टीका कारिणां
वाक्यं अद्वैत सिद्धान्त श्रीशंकराचार्य्य सम्प्रदाय ।

श्रीपरमानन्द स्वरूप श्रीमाधव को मैं नमस्कार करता हूं जिन्हों ने धर्म पुत्र युधिष्ठर को पृथ्वी में शत्रु रहित करके ब्रह्मास्त्र से परिक्षित की रक्षा की और कलियुग से साक्षात बिजय कराके सकल लोक में प्रसिद्ध किया और अन्त समय के औसर पर श्रीशुकाचार्य्य रूप से प्रगट होकर अपना परम ज्ञान उपदेश करके ब्रह्मशाप से पतन होते हुवे को बचाया और परमधाम को पहुंचाया ॥ १ ॥

यदीय कृतरंज सासु मनसां सुमानंसतांसती ।
सकल सन्नता सकल देववाणी निधिः ॥
सच्चित्सुख पयांनिधिः सरसिजे क्षणः श्रीपतिः ।
पराशर सरसिजः शरण मस्तुमे सन्ततम् ॥ २ ॥

श्री (विजयध्वज) तीर्थकृत पदरत्नावली
माध्वसम्प्रदाय द्वैतसिद्धान्त ।

जिसका निर्माण किया हुवा ग्रंथ सुन्दर मनवाले सतपुरुष महात्मावों के वाणी को अलंकृत कररहा है वो ज्ञान और

आनन्द के निधि कमलदल लोचन लक्ष्मीपति के अवतार पराशर पुत्र श्रीबेदव्यास भगवान के हम सदा शरण हैं ॥ २ ॥

वन्देवात्स्यमहोवलार्य्यतनयं वात्सल्यवारांनिधिम्।
श्रीशैलेशगुरूं श्रियः पतिमपि प्रचार्य परम्पराम् ॥
तूर्यव्यूह मशेष हेतु मजितस्स्या जन्तु द्रुस्संजगम् ॥
देवर्षिप्रवरं पराशर सुतं व्यासंच वैयाशकिम् ॥ ३ ॥

श्रीमत् वीरराघवाचार्य्यकृतं श्रीमद्भागवत चन्द्रिका व्याख्या
श्री (रामानुज) संप्रदाय विशिष्टा द्वैतसिद्धान्तः ।

वत्सल गोत्र में उत्पन्न अहोंवल नृसिंहाचार्य्य के पुत्र वात्सल्य समुद्र श्री शैलेश गुरु को और लक्ष्मीनारायण से लेकर सम्पूर्ण श्री सम्प्रदाय के आचार्य्य महानुभावों को और चतुर्थ व्यूह श्री अनिरुद्ध भगवान् प्रलय समुद्र शायी जिन के नाभीकमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुवे जो सम्पूर्ण जगत के आदि कारण अपने पुत्र ब्रह्मा को चतुश्लोकी भागवत् को उपदेश किया उन अनिरुद्ध भगवान् को और ब्रह्मा को देवर्षि में श्रेष्ठ नारदजी को और श्री पराशर पुत्र श्री वेदव्यास भगवान और श्रीमत शुकाचार्य्य महाराज को वन्दना करता हूं ॥ ३ ॥

प्रणम्य श्रीगुरुं भूयः श्रीकृष्णा करुणार्णवम् ।
लोकनाथं जगच्चक्षुः श्रीशुकं तमुपाश्रये ॥ ४ ॥

श्रीमद विश्वनाथचक्रवर्तिकृत सारार्थदर्शनी टीका
श्री (विश्वनाथ) गौडेश्वर संप्रदाय अचिन्त्याद्वैतसिद्धान्तः ।

लोकनाथगोस्वामी अपने गुरु को प्रणाम करके और करुणा समुद्र श्रीकृष्णभगवान को और श्रीमद्भागवतोपदेश रूपी ज्ञान नेत्र द्वारा संपूर्ण जगत को उपकार करने वाले श्रीमत शुकदेवमुनिराज महाराज को आश्रय करता हूं ॥ ४ ॥

शेषंसनत्कुमारादीन् सांख्यायनपराशरौ ।
नारदंभगवद्व्यासंशुकंसूतंद्विजान्नृपम् ॥
गुरून्विप्रानदोभक्तान्निश्वंवन्देहरेर्वपुः ॥ ५ ॥

रामनारायण कृत भावविभाविका,
टीका श्री (स्मार्त) अद्वैतसिद्धान्तः ।

श्रीशेषजी और सनत्कुमारजी प्रभृति सांख्यान पराशर श्रीनारदजी और श्रीमद्वेदव्यासजी और श्रीशुकाचार्य्यमहाराज और सूतजी शौनकादि महर्षि गण महाराज परिक्षितजी और गुरुजन ब्राह्मण समूह भक्तजन साक्षात् श्रीहरि के अङ्गरूप सर्व जगत को बन्दना करता हूं ॥ ५ ॥

॥ बचनिका ॥

कोई कोई शाक्तिक लोग देवी भागवत को वेदव्यास प्रणीत बतलाते हैं सो सर्वथा असत्य है, जितने महात्मा महानुभाव हुए हैं सब ने श्रीमद्भागवत को ही मान्य कहा है और प्रचार भी सब जगह इसही का है ।

(मत्स्यपुराण में पुराणदान प्रस्ताव में कहा है)

यत्राधिकृत्यगायत्रीं वर्ण्यतेधर्मविस्तरः ।
वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते ॥ ६ ॥

जिस में गायत्री को प्रतिपादन करते हुए धर्म का विस्तार वर्णन किया है और जिस में वृत्रासुर का वध वर्णन है उसको श्रीमद्भागवत व्यास प्रणीत मानना चाहिये ।

हे युधिष्ठर ! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द तुह्मारी भक्तिवश हो कर तुह्मारे सेवक आदिक बनें अर्थात् भक्तिसे भगवान पूर्णरीति से भक्तपराधीन होजाते हैं, इसही कारण मुक्ति देदेते हैं और भक्ति सहजही नही देते हैं, यहां भक्ति के और मुक्ति के सुख में प्रत्यक्ष तारतम्य अर्थात् उचाई निचाई बतलाई है ॥ ६ ॥

(श्रीमद्भागवतरसात्मकफलआस्वादनप्रशंसावर्णन)

जयतिपराशरसूनुः सत्यवती हृदयनंदनोव्यासः ।
यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिवति ७

पराशरजी के पुत्र सत्यवती के हृदय को आनन्द देनेवाले व्यासजी की जय हो जिन के मुख कमल से निकला हुवा वाणी रूपी अमृत जगत पान करता है ॥ ७ ॥

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतं
पिवतभागवतंरसमालयं मुहुरहोरसिकाभुविभावुकाः

वेद रूपी कल्पवृक्ष का अमृत रसयुक्त रूप फल शुक के मुख से गिराहुवा एसा जो श्रीमद्भागवत ग्रन्थ रसका भण्डार उस को भूमण्डल पर रसिक लोग पान करें ॥ ८ ॥

संसारसिंधुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षोर्नान्यः प्लवोभगवतः पुरुषोत्तमस्य । लीला कथारसनिषेवणमन्तरेण पुंसोभवेद्विविधदुःखदवार्दितस्य ॥ ६ ॥

श्रीमद्भागवते द्वादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्याय ३९ श्लोक,
श्रीशुकाचार्य्य वचन परिक्षित प्रति ।

हे राजन् ! अनेक प्रकार के दुःख रूप दावाग्नि से पीडित हुवे और दुस्तर संसार समुद्र को तरने की इच्छा करने वाले पुरुष को पुरुषोत्तम भगवान की लीला रूप कथामृत के रसका सेवन करे बिना दूसरा तरने का उपाय है ही नहीं, इस कारण वह यथाशक्ति भगवत कथाओं का श्रवण करें ॥ ९ ॥

॥ आचार्य्य करतव्य ॥

स्वयमाचरते शिष्यानाचारेस्थापयत्यपि ।
आचिनोतिहिशास्त्रार्थ माचार्यस्ते न कथ्यते ॥१०॥
आम्नायतत्वविज्ञाना चराचरसमानतः ।
यमादियोगसिद्धत्वा दाचार्यस्ते न कथ्यते ॥ ११ ॥

आप धर्म का आचरण करें और शिष्यों को भी आचरण करावें एवं शास्त्र के सिद्धान्त को संचय करें, इसही से वे आचार्य्य कहलाते हैं ॥ १० ॥ शास्त्र के तत्वको जानने से तथा चराचर की समता से एवं यमादियोग की सिद्धता से उनको आचार्य्य कहते है ॥ ॥ ११ ॥

॥ श्रीशुकमुनि महत्व वर्णन ॥

यं प्रव्रजन्तमनुपेत मपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव । पुत्रेतितन्मयतयातरवोऽभिनेदुस्तं सर्व भूत हृदयं मुनिमानतोस्मि ॥ १२ ॥

(श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धे)

श्रीशुकाचार्य्य षोड़श वर्ष की अवस्था से जब अग्निकुण्ड की वेदी से प्रगट हो के बनको पधारनें लगे, तब श्रीवेदव्यास बिरहातुर होकर (हे पुत्र हे पुत्र) इस तरह बुलाने लगे, तब वृक्षों में से (मैं शुकहूं मैं शुकहूं) ऐसी ध्वनि आनें लगी ऐसे जो सर्व प्राणीमात्र में स्थित हैं, उन श्रीशुकमुनि को प्रणाम करताहूं। इस श्लोक में यह भाव जनाया कि श्रीशुकमुनि राज परमात्मा का ही स्वरूप और अवतार हैं, सर्वस्थान में व्यापक हैं।

श्रीस्वामी श्यामचरणदास महाराज ने श्रीशुकमुनि राज महाराज को गुरु व मुनि भूप वरणन किया, सो प्रगट ही है कि जिस समय श्रीशुकमुनि, राजा परिक्षित को श्रीमद्भागवत कथा सुनाने को पधारे, उस समय सब ऋषि महर्षि तथा उन्हों के पिता श्रीवेदव्यास और पितामह पराशरादि उठ खड़ेहुवे और प्रणाम किया ॥ १२ ॥

यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेकमध्यात्म दीपमति तितीर्षतां तमोन्धम् । संसारिणां करुणयाहपुराण गुह्यंतं व्याससूनुमुपयामिगुरुं मुनीनाम् ॥ १३ ॥

(श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धे)

जिन्होने संसार में लिप्त मनुष्यों के अंधकार रूप समुद्र के तरने के लिये सकल वेदों का सार अपना अनुभव गुह्य भागवत पुराण वर्णन किया, उन सकल मुनियों के गुरु व्यास नन्दन की मैं शरणहूं ॥ १३ ॥

नन्दनन्दन रूपस्तु श्रीशुकोभगवानृषिः ।
श्रीमद्भागवतं तुभ्य मुपदेक्ष्यति न संशयः ॥ १४ ॥

(स्कन्दपुराणे उद्धव वाक्य परिक्षितप्रति)

नन्दनंदन रूप श्रीशुकभगवान तुझ को (परिक्षित को) श्रीमद्भागत निःसन्देह उपदेशकरेंगे । श्रीशुकाचार्य भगवान को तो सबही संप्रदायों में आचार्य रूप और मान्य माना है इनही की कथित श्रीमद्भागवत का आश्रय सब संप्रदायों नें लिया है और सर्वाचार्यों नें भागवत पर टीका किया है ॥ १४ ॥

॥ दोहा ॥

श्रीशुकमुनि भागवत कहि, लीनो जगत उधार ।
नां तो अबलों रसातल, जातो यह संसार ॥ २ ॥
चार सम्प्रदावैष्णवी, इनही के आधार ।
कहिसुन श्रीमद्भागवत, उतरें भवजलपार ॥ ३ ॥

(भक्तिरसमंजरी ग्रन्थे)

मध्व और निम्बार्कसंप्रदाय में श्रीमतवेदव्यासभगवान व शुकदेव को श्रीश्यामलासखी का स्वरूप माना है, जैसा कि स्वमार्गीय ग्रन्थों में विस्तार पूर्वक वर्णन किया है, श्रीवल्लभ कुल आचार्य परम्परा में श्रीमतवेदव्यास भगवान और शुकमुनिराज को वर्णन किया है, जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से प्रगट है । १५

आदौ श्रीपुरुषोत्तमं पुरहरं श्रीनारदाख्यं मुनिम् ।
कृष्णांव्यासगुरुंशुकंतदनु विष्णुस्वामिनंद्राविडम् १५
तच्छिष्यं किलबिल्वमङ्गलमहं वन्देमहायोगिनम् ।
श्रीमद्वल्लभनामधामचभजेऽस्मत्संप्रदायाधिपमिति

(शांडिल्य संहितायां)

श्रीपुरुषोत्तम भगवान् ने शिवजी को उपदेश किया, शिवजी ने श्रीनारदजी को, नारदजी ने श्रीवेदव्याजी को, श्रीवेदव्यासजी ने श्रीशुकमुनिराज को, उन्हों ने विष्णुस्वामी को, विष्णुस्वामी ने विल्वमंगलजी को और उन्हों नें श्रीवल्लभाचार्य्यजी को आचार्य्य गद्दी पर स्थापित किया था ॥ १६ ॥

{ श्रीशङ्कराचार्य्य स्वामी जिन्हों से ज्ञानकी अद्वैतसम्प्रदायचली है उन्होंनेभी अपने आचार्य्य परंपरामें श्रीशुकमुनिराजको माना है }

* अद्वैत सम्प्रदायकुल वृत्त *

श्रीमन्नारायण–श्रीब्रह्मा–वशिष्ठ–शक्ति–पराशर–श्रीवेदव्यास–श्रीशुकमुनि–गोड़पाद–गोविन्दयोगी–श्रीशङ्कराचार्य्य ।

(श्रीशुकाचार्य्य सखी रूप वर्णन)

॥ दोहा ॥

आचारज भूतल प्रगट, कुंजसहचरी रूप ।
सरसमाधुरी भेद यह, समझें रसिकअनूप ॥ १ ॥

इसही अभिप्राय से श्रीशुकमुनिराज आचार्य रुप से भूतल में और सुखसखी रूपसे नित्य निकुञ्ज श्रीवृन्दावनधाम

में श्रीराधासरसविहारीलालजू के नित्यपरिकरमें अष्टयामसेवा सुखपरमानन्द में निमग्न रहते हैं और नित्यधाम रंगमहल में सखी रूप श्रीशुकमुनिराज महाराज के अष्टयाम सेवा में अष्टनाम प्रसिद्ध हैं ॥ १७ ॥

॥ दोहा ॥

जैति जैति जे सुखसखी, सुखदा हितकी रूप ।
आल्हादनि कल बेंनका, आनन्दा जु अनूप ॥ ५ ॥
रस पुंजा रस रूपिनी, प्रेमप्रभा अभिराम ।
अष्टम प्रमुख नामशुक, तिनको कोटि प्रणाम ॥ ६ ॥

(भक्तिरसमंजरी ग्रन्थे)

॥ श्रीशुकनाम व्यूत्पत्ति तथा भावार्थ बचनिका ॥

व्याकरण विद्यासों शुकधातु है, ताते परमशान्ति अर्थात् परमानन्दमई तिनको स्वरूप है, और शान्ति रूपा आल्हादिनी रूप होय के दिव्य मंडलन में व्यापक है। सो ताकी सवही अभीलाषा करे हैं, सोई आप को निज ऐश्वर्य बैभव है, अरु सायोज्य, सारूप्य, सामीप्य, सालोक्य, चारों मुक्तिके देनेको आप को अधिकार है। अरु (शुक) शब्दमें द्वै वरण हैं, (स) (क) सो सकार रूपी संधिनी संवित श्रीप्रियाजी। अरु ककार रूपी परमानन्द स्वरूप श्रीकृष्णचन्द्र हैं। या हेत सें युगलस्वरूपात्मक आपको नाम अरु रूप है। अरु दंत्यसकार व तालव्यशकार उभय व्याकरण की रीति करके सवर्ण, पुनः (स) अक्षरसों सत्य जो प्रिया प्रीतम परम सुन्दर तिनको मिलावें हैं। अरु (क) अक्षर

परम करूणा को सूचक अरु कृतार्थ व कल्याण कारी है, अरु कलुष भंजन है ॥ १८ ॥

(भक्तिरसमंजरी ग्रन्थे)

इस अभिप्राय सें श्रीशुकनाम ऐश्वर्य माधुर्य मय सुखकी राशी सर्व प्रकाशी घट घटवासी अविनाशी परमानन्द बिलासी हैं; इसके सिवाय श्रीसामवेद की रहस्योपनिषद में सुखदासखी नाम रासविलास सेवा में वरणन है ॥ १९ ॥

सुखदासखी नाना सुखं रसिकानन्दं प्रतिराधिकार्थें कल्पयति । (रहस्योपनिषद ग्रन्थे)

अरु श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय मित्रशिक्षा नामक ग्रन्थोक्त ।

॥ दोहा ॥

कलियुग मधि आचार्य, श्रीशुकमुनि बिच संसार ।
सखी श्यामलाजू महा, भरी प्रेम मतवार ॥ ७ ॥
प्रथमहि श्रीशुकवेदजी, श्रीवेदव्यास के शिष्य ।
आचारज यही मार्ग के, श्रीकृष्णहि रूप प्रतिष्य ॥ ८ ॥
श्रीराध परिकर विषेसखी, रूप सुकुवार ।
जुगल रूप आसव छकनि, निरखत नित्य विहार ॥ ९ ॥
नाम श्यामलाजू सखी, छवि माधुर्य अपार ।
मन रंजन श्रीराधिका, लखकछु पिय उनहार ॥ १० ॥
ऐसे महामुनिंन्द्र जो, श्रीशुकदेवजु नाम ।
प्रेममत्त निजइच्छा गति, बिचरत है सबठांम ॥ ११ ॥

और बहुत से महानुभाव रसिकन की वाणी में श्रीशुकाचार्य

महाराज आचार्य रूप व सखी रूप को वर्णन है, विस्तार के भय से अत्यंत सुक्ष्म लिखागया है ॥ २० ॥

* श्री श्रीमतश्यामचरणदासाचार्य परत्व वर्णन *

भवाम्बुधेनिमग्नां त्राताउद्धारणात्तमः ।
सर्वदर्शीविमुक्तात्मा रणजीतो महाबल ॥ १७ ॥
अक्तोभ्योशाश्वतोवैद्यो चरणदासोसुरारिहा ।
मुरलीधरप्राणप्रियोधाता सर्वज्ञशान्तिकृत ॥ १८ ॥
तेजओजोद्युतिधरः प्रकाशात्मासतां गतिः ।
पावनः पवमानश्च कुञ्जमत्योदरोद्भवः ॥ १६ ॥

संसार समुद्र में डूबे हुओं की रक्षा करनेवाले तथा उद्धार करने को समर्थ सर्व जानने वाले जीवनमुक्त रणजीत नामवाले महावलवान। क्रोध रहित शान्ती रूप निरंतर अर्थात् नित्य स्वरूप संसारार्ति रोगियों के वैद्य सरूप चरणदास; देवताओं के शत्रु राक्षस जिनके विनाशक; मुरलीधर पिताके प्राणप्यारे; पालन करने सर्व जानने वाले, और शान्ति करनेवाले। तेजस्वी पराक्रमी और कान्ति धारक प्रकाशमान स्वरूप सत्पुरुषों की गति पवित्र और दूसरों को पवित्र करने वाले कुंजोमाता के उदर से प्रगट होनेवाले ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

ब्रह्मण्योवीतरागश्च वेदगम्योपुरातनः ।
सिद्धांतरूपोआचार्यो प्राणः सर्वेश्वरस्तथा ॥ २० ॥
पाखंडधर्मलुप्ताच वेदमार्गप्रवर्तकः ।
केवलानुभवानन्दः स्वरूपःसर्वदृक्स्वयम् ॥ २१ ॥

ब्राह्मणों के भक्त संसार आसक्ति रहित वेद करके जानने योग्य (यद्वा) सर्व वेदतत्वज्ञ और प्राचीन सनातन सिद्धान्त के स्वरूप और आचार्य रूप सर्व के जीवन रूप सर्व के ईश्वर। पाखण्ड रूपी अधर्म के नाश करनेवाले, वेदमार्ग को फैलानेवाले केवल अनुभवानन्द रूप सबको आप देखनेवाले ॥ २० ॥ २१ ॥

* श्रीमत चरणदास ध्यान *

कनक निचय कांतिः पद्मपत्रायताक्षो ।
विमल परम ज्योति यौवनोद्भिन्नदेहः ॥ २२ ॥
अभय वरदराज्यं नित्यमेवादधानः ।
जयति चरणदासो सिद्धि प्रत्यक्षदाता ॥ २३ ॥

सुवर्ण के समूह के समान कान्तिवाले और कमल पुष्प दलके समान सुन्दर नेत्र वाले, मल रहित शुद्ध परम ज्योति स्वरूप नित्य किशोर अवस्थावाले, अभय राज्य के देने वाले (अर्थात्) जन्म मरणादि भयसे छुड़ाकर जीवों को अभय कर परमधाम में पोंहचाने वाले और प्रत्यक्ष (अर्थात्) प्रगट सर्व सिद्धिके देनेवाले श्रीमत चरणदास महाराज की सदा जय हो, जय हो ॥ २२ ॥ २३ ॥

(भविष्योत्तरपुराणे, श्रीशिव पार्वती सम्वादे श्रीशिववाक्यम्)

जयति चरणदासो वैष्णवालंकृतियों ।
मुनिजन परमोजा शक्रप्रस्थेसंभावी ॥ २४ ॥
कलियुग जन दुःखारण्य दीप्ताग्निभूतो ।
मुनिशुक चरणाब्जे चञ्चरीक प्रसिद्धः ॥ २५ ॥

वैष्णवों के भूषण स्वरूप और मुनियों में परम तेजस्वी और इन्द्रप्रस्थ अर्थात् (दिल्ली) स्थान में शोभायमान कलियुग के मनुष्यों के दुःख रूपी बनको जलानेवाले श्रीशुकमहामुनिराज के चरण रूपी कमल के भ्रमर और जगत प्रसिद्ध श्रीमत चरणदासजी महाराज की जय हो ॥ २४ ॥ २५ ॥

(बृहत्पद्मपुराणे श्रीसूत शौनक सम्वादे)

श्रीमतश्यामचरणदासजी के सखी स्वरूप निकुंज सम्बन्धी अष्टनाम ।

॥ दोहा ॥

प्रेममंजरी नाम है, गंधर्वा गुणग्राम ।
प्रमोदनी मधुरास्वस, सहजानन्दनिवास ॥ १२ ॥
गुण प्रकाशिका जानियें, जुगतानन्द निवास ।
प्रमुद मंगलाजू सखी, रूप राशिछविजाल ॥ १३ ॥

(भक्तिरसमंजरी ग्रन्थे)

* श्रीगुरू छीना अखेराम गुरू शिष्य सम्वाद *

॥ दोहा ॥

अखेराममुनि कहत हौ, गुह्यकथा है तात ।
सतगुरु इष्ट सो इष्ट मम, कहौं इष्ट की बात ॥ १४ ॥
निज वृन्दावन रंग महल, राजत प्यारी पीय ।
अष्टसखी शोभित टहल, बहुत मंजरी तीय ॥ १५ ॥
सखीभाव राधाभजे, सो पहुंचे निजधाम ।
टहल लहै सामीपता, तब रीझैं घनश्याम ॥ १६ ॥

* शिष्य वचन, दोहा *

इष्टकथा सुन सुखभयो, आनन्द बहुत हुलास ।
जुगल टहलमें मनलगे, रहिये प्रीतम पास ॥ १७ ॥
कठिनबात प्रभु सहल नहि, हैं रसिकन को अंग ।
तुम भीतर कैसे गये, कौन सखी के संग ॥ १८ ॥

* गुरु वचन, दोहा *

उज्जल बुद्धि सुधागिरा, बड़ी समझ विज्ञान ।
मिलन कथा सबही कहों, सुनिये शिष्यसुजान ॥ १९ ॥
परम गुरु शुकदेवजी, मंत्र गुरु चरणदास ।
प्रेम मंजरी इष्टगुरु, लेगई ललिता पास ॥ २० ॥
ललितासखि ममकरगह्यो, जा देखी निजठौर ।
राधेकृष्ण दरशन किये, तासुख कोन हि वोर ॥ २१ ॥

(ज्ञानसमूह ग्रन्थे)

* चौपाई *

सखाभाव पहुंचत वहिठाई * सखी भाव भीतर को जाई ॥
धरें स्वरूप अनूपम भारी * सदा सुहागिनि हरी पियप्यारी ॥
परमपुरुष पुरुषोत्तम पावें * निकट रहैं नित केलि बढावें ॥
चारों मुक्ति जहां कर जोरें * भाव बताय तान बहुतोरें ॥
दरशन कारन की सुखदाई * धारिसरूप रहैं हरषाई ॥ ७ ॥

॥ दोहा ॥

आस पास बहु कुंज है, बीच लालका धाम ।
चरणदास को दीजिये, सखियन में विश्राम ॥ २२ ॥

(अमरलोक ग्रन्थे)

श्रीमतश्यामचरणदासमहाराजसखीभेषधारन वर्णन

॥ चौपाई ॥

शहर पुराने थे इकवारी * आवे तहां बहुत नरनारी ॥
सखी भेष चरन्दासजु धारें * चूड़ी मांग सिंदूर सँवारें ॥
कर महँदी पग कङ्कन साजें * सखीभेष १८ भूषन राजें ॥ ८ ॥

(ध्यानेश्वरजोगजीत कृत लीलासागर ग्रन्थे)

श्रीमतश्यामचरणदासदर्शनाभिलाषी, वृन्दावन पधारे सो प्रसङ्ग ॥ दोहा ॥

निज वृन्दावन देखिया, नित अखण्ड जहँ रास ।
पियप्यारी बिहरत सदा, जा पहुँचे वहां दास ॥ २३ ॥

॥ चौपाई ॥

चौंसठ खम्भा मध्य विराजे * अद्भुत रूप अधिक छबिछाजे ॥
तामें सिंहासन की शोभा, * देखत उपजे आनंद गोभा ॥
तापे ललित लाल अरु प्यारी * लीला कररहि बहुतक नारी ॥
एहू सखी रूप हो गये * सिंहासन ढिंग ठाड़े भये ॥ १ ॥

॥ दोहा ॥

जबहि लाल मुसक्याइ के, लीनी पास बिठाय ।
ऐसे अद्भुत समय पर, रामरूप बलिजाय ॥ २४ ॥

(गुरुभक्तिप्रकाश ग्रन्थे)

शृङ्गाररस उपासना सखीरूप होने का विस्तारपूर्वक वर्णन श्रीश्यामचरणदासाचार्य महाराजने अपने श्रीमुख से श्रीराम-सखी प्रति किया है, भक्तिरसमञ्जरी ग्रन्थे में ।

श्रीमतभक्तिसागर में भी जगह २ वर्णन सखी भावना और सखीरूपका है। जैसे अमरलोक वर्णन में और २ अन्य अनेक शब्द व पदों में।

(चरणदास सखीपर शुकदेव गुरू कृपा कीनी बांको सो बिहारी एक पलमें दिखायो है) (गोपी कहै चरणदास श्यामकी सो सुख हमें दिखायें हो) (चरणदास यह सखी तिहारी मिलजा छानी हो) (चरणदास तिनकी भई लगोरहै वही ध्यान हो)

और होरी, बसंत, मांझ, सीठना, सोरठ, विहाग। तथा पदों व शब्दों में सखीभाव प्रत्यक्ष रूपसे कहा है, विस्तार के भयसे यहां सूक्ष्म लिखागया है।

{ श्रीकिशोरी अलीजी ने श्रीश्यामचरणदासाचार्यजी से परस्पर पत्र व्योहार कर, अपने विनयपत्र में लिखा है। }

॥ दोहा ॥

स्वस्ति श्री राधारमण, चरण सेय सुखधाम।
पायो यांही ते सरस, चरणदास यह नाम ॥ २५ ॥
जगन्नाथ तिनको करत, बारंबार प्रणाम।
जाते सत्वर होत हैं, मनके पूरण काम ॥ २६ ॥
श्रीशुकमुनिजिनकोंदई, निजसम्पतिअपनाय।
तिनकी महिमा कहनको, काकी मति ठहराय ॥ २७ ॥
ज्ञान चाहि ज्ञानी कहें, योगी योग विचार।
भोगी भोगी मानहीं, लहत न कोउ निरधार ॥ २८ ॥
कृपा तिहारी सों हमें, जानपड़ी यह लाग।
परम तत्व के प्राण में, है मनको अनुराग ॥ २९ ॥

श्रीमुखको यह वचन है, राधा जीवन प्रान ।
तिनकी छविको निरखिके, है रही सहजबिकान ॥ ३० ॥
ता स्वामिनि की सखी है, सेवा पाई आप ।
प्रियाचरण सेवन करत, मिली चरणकी छाप ॥ ३१ ॥
चरणदास यह नामधरि, प्रगट जगत में आय ।
जे जे जन सनमुखभये, ते लीने अपनाय ॥ ३२ ॥

दिल्ली निवासी एक कायस्थ सेवक के बालक को श्रीमहाराज ने अपनी चरणशरण में लेकर रामसखी नाम दानकर नृत्यगानादि विद्या में निपुण कर श्रीयुगलविहारीजी की सखी भावना में तत्पर करदिया, थोड़े ही दिनों में श्रीरामसखीजी ने पूर्ण प्रेमा-भक्ति प्राप्त करली, सरद पूर्णिमा की रात्रि को खास दिल्ली में अन्य प्रेमारूढ स्त्रियों सहित साजवाज संयुक्त श्रीकृष्ण प्रेमावेश में नृत्य गान करते हुवे विरहावस्था में हा श्रीकृष्ण अश्रुपात गद गद स्वर सहित पुकारने लगे, उसहि समय श्रीबांकेबिहारी मुकुटधारी भक्तहित्त कारी प्रगटहो रामसखी के गलबैयां डाली तत्काल सदेह परमधाम लेगये ।

॥ दोहा ॥

सहित देह प्रभु पतिमिली, रामसखीही जान ।
जोगजीत सबसों कही, श्रीमहाराज बखान ॥ ३३ ॥

(लीलासागर ग्रन्थे)

* श्रीमतशोभनदासजी का जीवनचरित्र *

जन्मभूमि श्रीश्यामचरणदासाचार्य महाराज डहराग्राम जो राजधानी अलवर से उत्तर तीन कोसपर है, वहां के ग्रामाधीश

श्रीमान् श्रीहरिभक्त प्रधान प्रेम प्रीति की खांन भार्गवकुल भूषण श्रीमत शोभनदासजी हुवे, जो श्रीमहाराज से पहिले आठवी पीढ़ी में थे, ये गृहस्थाश्रम में ही परमभक्त सन्तसेवापरायण सखीभावना मानसी महल सेवा में श्रीयुगलविहारीजी के ऐसे तन्मयताको प्राप्तभये ।

॥ चौपाई ॥

मनसों कंचन महलबनायो * रत्नजटित नीको बनि आयो ॥
सिंहासन वा मध्य बिछायो * अद्भुत पट ता माहि सजायो ॥
कृष्ण साँवरे राधे गौरी * जित पधराई सुन्दर जोरी ॥
सोंही बैठ निहारन लागे * वा छविही के माँहीं पागे ॥
आपा भूले तनसुधि नाहीं * आठ पहर बीते वा ठाहीं ॥
प्रभु वा प्रीति घनी दरसाई * दर्शन देनें की मन आई ॥१०॥

॥ दोहा ॥

प्रतक्ष होय हलायता, शोभन खोले नैंन ।
परमानन्द सरूप लखि, रोम रोम भयो चैंन ॥ ३४ ॥

॥ चौपाई ॥

कही प्रभु बरमांगो हितकारे * जो इछा हिय होय तुम्हारे ॥

॥ दोहा ॥

शोभन सुन करजोर के, बर मांगो जब येह ।
मेरे कुल में भक्ति तव, सदा रहे यह देह ॥ ३५ ॥

॥ चौपाई ॥

है प्रसन्न बोले गोपाला * भक्ति दई कुल किये निहाला ॥

तवकुल मांही भक्ति चलेगी ❀ अष्टम पीढ़ी जाय फलेगी ॥
लेहुं अंश अवतार जहांई ❀ भक्त रूप धारि आऊं वहाई ॥
भवन तुम्हारे मैंही आऊँ ❀ कलियुग मांही भक्ति चलाऊँ ॥
हितके बचन कहे हरि सबही ❀ अन्तरध्यान भये प्रभु तबही ॥११

(लीलासागर ग्रन्थे)

शोभनदासजी की अन्तरंग सखीभावना के प्रताप सेही साक्षात् श्रीकृष्ण प्रगट हुवे और प्रसन्न होकर शोभनदासजी को बरदान देगये कि तुम से पीछे तुम्हारी आठवीं पीढ़ी में स्वयम् हम अंशावतार धारन कर प्रकट होंगे और कलियुग में भक्तिमारग प्रकट करेंगे, इसही अभिप्राय से श्रीश्यामचरणदासाचार्य रूपसे श्रीकृष्ण ने प्रगट होकर श्रीशुक सम्प्रदाय को प्रगट कर के श्री हरिभक्ति को बिस्तार कर जगत के जीवों का उद्धार किया, इस हेतु से श्री श्यामचरणदासाचार्य खास श्रीकृष्ण भगवान के अंशावतार भक्तिप्रचार और जगत के जीवों के उद्धार के वास्ते भूतल में प्रगट हुवे और अनेक ईश्वरीय चमत्कार परोपकार और धर्म के प्रचार के अर्थ राजा तथा बादशाहों को दिये, उन परचों में से पांच सात परिचय यहां पर लिखेजाते है।

एक नागरीदास बैष्णव को श्री महाराज ने श्री जगन्नाथ रूप से दिल्ली में दर्शनदिये। दो बिदेशी ब्राह्मण जो बैजनाथजी के शीशी गंगोत्री चढाने जाते थे, उन्हो को बैजनाथ रूप से दिल्ली में दर्शनदिये और उन्हों ने गंगोत्री जल से श्रीमहाराज को स्नानकरा के और बैजनाथ रूप दर्शन पाके प्रसन्न हुवे।

परमानन्ददास नाम राधावल्लभीय बैष्णव को श्रीकृष्ण रूप से प्रत्यक्ष दर्शन दिया और उन्हों का मनोरथ पूरणकिया।

श्रीस्वामी राम रूप भक्तानंदजी महाराज, और ध्यानेश्वर जोगजीतजी महाराज, श्रीगुरु छौनाजी, तथा श्रीकुंजो माताजी को, व जैकरन बैश्य सेवक को, श्री निजवृन्दाबनधाम श्रीश्यामा श्याम के साक्षात् दर्शन कराये।

स्वर्ग प्रवाही श्रीगंगाजी के जल से सेवकों को दिल्ली में स्नान कराया। आगरास्थान श्रीजमुनाजी के जल में प्रगट होकर नाव में बैठे हुवे सन्तों की नाव डूबती हुई को उबार कर सन्तों को बचाया। दिल्ली निगमबोधक्षेत्र घाट जमुना जल में प्रगट होकर अपने मुक्तानन्द नामी शिष्य को जो ग्राह ने पकड़ लिया था छुड़ाया। आतमराम दिल्ली निवासी नास्तिक दूसर को नर्क दर्शन करा कर आस्तिक बनाया। दिल्ली के मोहम्मदशाह बादशाह को नादिरशाहके दिल्ली में आनेका छे महीने पहले कहला दिया। और नादिरशाहने भी ईश्वरीय चमत्कारों से परिचित होकर अपने आसुरी तामसी प्रकृति भाव छोड़ कर श्रीमहाराज का आज्ञावर्ती होकर महाराज के साथ सिष्टाचार भाव से मान्य किया और श्रीमहाराज को बहुत से ग्राम भेट के तौर पर देने का सत्य मनोरथ प्रगट किया, परन्तु श्रीमहाराज ने कुछ भी नहीं लिया।

एक दिल्ली निवासी खत्री सेवक की दो पुत्री जिन की उमर तीन महीने की हुई थी, उन लड़कियों को श्रीमहाराज ने अपने ईश्वरीय प्रभाव से लड़के बना दिये।

संकट में सन्त और भक्तजनों ने जहां २ सहायता के वास्ते प्रार्थना करी, वहां पर अनेक रूप धारन कर और वहां प्रगट होकर उन्हों की पूर्ण रूपसे सहायता करी। और भरतखण्ड भूमिमें भागवत धर्म का प्रचार किया और प्राणीमात्र को अभय दान दिया, (अर्थ धर्म काम मोक्ष) चारों पदार्थों में से जिस जीव ने जो इच्छा प्रगट की वोही उन्हों को पदार्थ प्रदान किया। श्रीमत लीलासागर ग्रन्थ ध्यानेश्वर जोगजीत रचित, तथा श्रीगुरुभक्तिप्रकाश ग्रन्थ, श्रीस्वामी रामरूपजी रचित में सहस्रों परिचय श्रीमहाराज के वर्णन किये गए हैं, उन्हों के अवलोकन से मालूम होसक्ता है।

* श्रीगुरूपरत्व बर्णन *

आचार्यंमां विजानीयात् नावमन्येतकर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्धयासूयेत सर्वदेवमयोगुरुः ॥ २७ ॥

(श्रीमद्भागवते)

श्रीभगवान का वचन है कि गुरु साक्षात् मेराही स्वरूप है, उन को मनुष्य समझकर उन का अपमान न करे, गुरू सर्वदेवमई हैं।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरुरेवपरंब्रह्म तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥ २८ ॥

गुरुही ब्रह्मा, गुरुही विष्णु, गुरुही शिव और गुरुही परब्रह्म हैं, ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।

अखंडं मंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥ २६ ॥

जो सम्पूर्ण रूप से इस स्थावर जंगमात्मक संसार में व्याप्त होरहे हैं, उन परमात्मा के परमपद का दर्शन जो कराते हैं, ऐसे श्रीगुरु को नमस्कार है ।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥ ३० ॥

जिन्हों ने ज्ञान रूप अंजन शलाका द्वारा अज्ञान रूप अन्धकार सें अन्धेहुवे जीवों के नेत्रों को खोलदिया है, ऐसे श्रीगुरु को नमस्कार है ।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिं पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥ ३१ ॥

गुरुमूर्त्ति ध्यानही सब ध्यानो का मूल है, गुरु के चरण-कमल की पूजाही सब पूजाओं का मूल है, गुरुवाक्यही सब मंत्रों का मूल है, और गुरुकी कृपाही मुक्ति प्राप्तकरने का प्रधान कारण है ।

सप्तसागरपर्यन्तं तीर्थस्नानादिकैः फलम् ।
गुरोरंघ्रीजलंबिन्दु स्तत्कोट्यांशेनदुर्लभम् ॥ ३२ ॥

सप्तसमुद्र पर्य्यंत तीर्थों में स्नानकरने से जो फल लाभहोता है, गुरु के चरणकमलों के एक विन्दु चरणामृत पान करने से उससे अधिक फल होता है, इस कारण गुरुपादपद्म जल कोट्यअंशेन पवित्र और दुर्लभ है ।

गुरुरेवजगत्सर्वं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
गुरोः परतरंनास्तितस्मात्सम्पूजयेद्गुरुम् ॥ ३३ ॥

गुरुही ब्रह्मा, बिष्णु, और शिव इन त्रृदेव रूपों से समस्त विश्व में व्यापित हैं, गुरु की अपेक्षा और कोई श्रेष्ठ नहीं है, इस कारण गुरु की पूजा करना सदा उचित है ॥ ३३ ॥

ज्ञानंविनामुक्तिपदं लभते गुरु भक्तितः ।
गुरोः परतरंनास्ति ध्येयोऽसौ गुरु मार्गिणा ॥ ३४ ॥

गुरु के प्रति भक्ति करने से ज्ञान के बिना भी मुक्ति पद लाभ होसक्ति है, श्रीगुरुदेव से परे और कुछ भी नहीं है, इस कारण गुरु पथा वलम्बी साधकगणों को ऐसे गुरुदेव का ध्यान करना उचित हैं ॥ ३४ ॥

गुरोः कृपा प्रसादेन ब्रह्मा विष्णु सदाशिवाः ।
सृष्ट्यादिक समर्थास्ते केवलं गुरु सेवया ॥ ३५ ॥

ब्रह्मा, बिष्णु और शिव, ये तीनो देवता केवल एक मात्र श्रीगुरुदेव की कृपासे ही और गुरु सेवा के फलसेही सृष्टिपालन और प्रलय क्रिया करने में समर्थ हुवे हैं ॥ ३५ ॥

गुरु सेवापरंतीर्थं मन्यतीर्थं मनर्थकम् ।
सर्वतीर्था श्रयंदेवी सद्गुरोश्चरणाम्बुजम् ॥ ३६ ॥

हे देवी ! गुरु सेवाही सकल तीर्थों की अपेक्षा प्रधानतीर्थ है, गुरु के सन्मुख और तीर्थ वृथा हैं, सद्गुरु के पादपद्महीं और तीर्थों के अवलम्बन हैं ॥ ३६ ॥

गुरु पादोदकं पेयं गुरो रुच्छिष्ट भोजनम्।
गुरु मूर्तेः सदाध्यानं गुरुस्तोत्रं सदाजपेत् ॥ ३७ ॥

गुरु का चरणामृत पान, गुरु उच्छिष्ट भोजन, सर्वदा गुरु मूर्तिध्यान, और संतत गुरुस्तव पाठकरना, शिष्य को उचित है।

(श्रीगुरुगीतायां पद्मपुराणे)

श्रीशुकसम्प्रदाय में तो सर्वोत्तमता और श्रेष्ठता श्रीगुरु महिमा की वर्णन की गई है, श्रीश्यामचरणदासाचार्य महाराज नें तथा आप के शिष्य, श्रीस्वामी रामरूपजी, श्रीसहजोबाई आदिक ने दोहा, चौपाई, और पदों में अद्वितीय बिस्तार पूर्वक श्रीगुरुमहिमा वर्णन की है, उनमें से दिग्दर्शन मात्र दोहा, चौपाई व पद लिखेजाते हैं।

॥ अष्टपदी ॥

गुरु बिन और न जान मान मेरो कहो। चरणदास उपदेश बिचारतही रहो॥ बेदरूप गुरु होय के कथा सुनावई। पंडितको धरिरूप कि अर्थबतावई॥ गुरु है शेश महेश तोहि चेतन करे। गुरु ब्रह्मा गुरु बिष्णु होय खाली भरे॥ कल्पवृक्ष गुरु देव मनोरथ सब सरै। कामधेनु गुरु देव क्षुधा तृष्णा हरै॥ गंगा सम गुरु होय पाप सब धोवई। शशियर समगुरु होय तपत सब खोवई॥ सूरज सम गुरु होय तिमर सब लेवई। पारब्रह्म गुरु होय मुक्तिपद देवई॥ गुरुही को कर ध्यान नाम गुरुको जपो। आपा दीजे भेट पूजन गुरुही थपो॥ समर्थ श्रीशुकदेव कहा महिमां करौं। अस्तुति कही न जाय शीश चरणन धरौं।

॥ दोहा ॥

हरि सेवा सोलह वरस, गुरु सेवा पल चार ।
तौ भी नहीं बराबरी, बेदन कियो बिचार ॥ ३६ ॥
हरी रूठैं कुछ डर नहीं, तूभी दे छिटकाय ।
गुरुको राखो शीशपर, सबबिधि करैं सहाय ॥ ३७ ॥

॥ अष्टपदी ॥

गुरुको तजि हरिसेवकभी नहिं कीजिये । नहीं विमुख को ठौर नरक में दीजिये ॥ गुरु निंदक नहिं मुक्त गर्भ फिर आवई । चौरासीलख भुक्ति महादुख पावई ॥ प्रथम करे गुरु देखि परखि चरणन परै । उनकी धारण ध्यान टेक उर में धरै ॥ गुरुको रामहिं जान कृष्ण समजानिये । गुरु नृसिंह अवतार जु वामन मानिये ॥ गुरुको पूरण जान जु ईश्वररूप ही । सब कुछ गुरु को जान यह बात अनूपही ॥ हरिगुरु एकही जान यह निश्चय लाइये । दुविधा ही को बोझ जु बेग बगाइये ॥ धर्म्मपिता गुरु जान जु दृढता राखिये । लाज सकुच करि कान ढीठता नाखिये ॥ मेरा यह उपदेश हिये में धारियो । गुरुचरणन मन राखि सेवा तन गारियो ॥ जो गुरु झिड़कें लाखतौ मुखनाहिं मोड़ियो । गुरु सौं नेह लगाय सबनसों तोड़ियो ॥ जो शिष्य सांचा होय तो आपा दीजिये । चरणदास की सीख समझ कर लिजिये ॥ मोको श्रीशुकदेव यहीं समझाईया । वेद पुराणन माँहि जो यों हीं गाईया ॥ (भक्तिपदार्थ भक्तिसागर)

* पदराग सारंग *

मोकों गोविंद सों गुरु प्यारो । गोविंदने गुन संगी कीनों गुरु ने

कीनो न्यारो ॥ गोविन्द लोक भोग विष दीए अरु परलोक बिगारो। विषई बंधन काटे सारे गुरु परलोक सँवारो ॥ गोविन्द अर्थ काम मोहि दीनि भवसागर में डारो । अर्थ काम गुरु मोहि छुटायो भवसागर तें तारो ॥ चरणदास गुरुदेव दयाकरि दियो अभय पदभारो । रामरूप आनन्दहि पाये बार बार बलिहारो ॥

(मुक्तिमार्ग ग्रन्थे)

॥ दोहा ॥

माता सों हरि सौगुना, जिनसें सौ गुरुदेव ।
प्यारकरैं अवगुण हरैं, चरनदास शुकदेव ॥ ३८ ॥

(भक्तिपदार्थे)

गुरु समान तिहुँलोक में, और न दीखे कोय ।
नाम लिये पातक नशैं, ध्यान किये हरिहोय ॥ ३९ ॥
गुरुही के परतापसों, मिटे जगतकी व्याध ।
राग द्वेष दुख ना रहे, उपजे प्रेम अगाध ॥ ४० ॥

(गुटकासार भक्तिसागर)

हरि किरपा जो होय तो, नाहिं होय तो नांहिं ।
पै गुरु किरपा दया बिन, सकलबुद्धि बहिजाहिं ॥ ४१ ॥
अठसठ तीरथ गुरु चरन, परवी होत अखंड ।
सहजो ऐसो धाम नहिं, सकल अंड ब्रह्मंड ॥ ४२ ॥
सव तीरथ गुरु के चरन, नितही परवी होय ।
सहजो चरनोदक लिये, पाप रहत नहिं कोय ॥ ४३ ॥
गुरु पद निश्चे परसिये, गुरु पग हिरदे राख ।
सहजो गुरुपद ध्यान करि, गुरु बिन और न भाख ॥ ४४ ॥

परमेश्वर से गुरु बडे, गावत वेद पुरान ।
सहजो हरि के मुक्ति है, गुरु के घर भगवान ॥ ४५ ॥

(सहजप्रकाश ग्रन्थे)

रसिक रंगीले गुरुन की, सेवा कर सह प्रीत ।
जुगल भजन अरु भाव की, दृढ उर होय प्रतीत ॥ ४६ ॥
गुरु तज हरि भजिये नही, यही भेद तत्सार ।
हरिदेवेंगे मुक्तिपद, गुरु हरि के दातार ॥ ४७ ॥
सतगुरु मूरति रोमप्रति, रमे राधिका श्याम ।
नाम रूप लीला अमित, और अनेकन धाम ॥ ४८ ॥
नाम रूप धन के धनी, सतगुरु साहूकार ।
शिष्यन कों वान्टें सदा, भरे भँडार अपार ॥ ५१ ॥
सरसमाधुरी गुरुनके, गुनको अन्त न पार ।
गनपति शेश महेश श्रुति, गिनत गिनत गयेहार ॥ ५० ॥

(सरसमाधुरी विलासे)

तद्विज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियंब्रह्मनिष्ठ मिति ॥ ३८ ॥ (श्रुति)

उस परमात्मा के विज्ञान के अर्थ बेद शास्त्रआदि के ज्ञाता तथा ब्रह्म में निष्ठावान, अर्थात् भक्त गुरुकी शरण जाय, समिधा हाथ में लेकर अर्थात् निष्किञ्चन होवे तो समिधा (बनसे लकड़ी काटकर) ही भेट लेजाय रीते हाथ न जाय, क्यों कि परमात्मा राजाआदिकों के खाली हाथ जाना निषध है ।

यस्यदेवपराभक्ति यथादेवेतथागुरौ ३९ (इत्यादि श्रुति)

जिसकी अपने इष्टदेव में पराभक्ति होती है और वैसीही तीव्रभक्ति गुरुमें होती है, उसकोही परमात्मा पर तत्व प्रकाश होते हैं।

यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञान दीप प्रदेगुरौ।
मर्त्या बुद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुंजर शौचवत् ॥ ४० ॥

जिनको साक्षात् ज्ञान रूपी दीपक के उजाला करने वाले गुरुओं में जो साक्षात् भगवान है, मनुष्य बुद्धिहोती है, उनको सब सास्त्रादिक उपदेश हाथी के स्नान की सदृश निष्फल हैं।

नाहमिज्या प्रजातिभ्यां तपसोपशमेनच।
तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरु शुश्रुषयायथा ॥ ४१ ॥

(श्रीमद्भागवते)

श्रीभगवान का वचन है कि मैं यज्ञ, सन्तानोत्पत्ति तथा संन्यास से इतना प्रसन्न नहीं होताहूं, जैसा गुरुसेवा से ॥ ४१ ॥

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्तिते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः ॥ ४२ ॥

(श्रीभगवद्गीता ४ अध्याय में)

भगवद् ज्ञान तत्वदर्शी महात्माओं की दीन भाव से सेवा करके उनको प्रश्नआदि करने से प्राप्तकर। यहां श्रीगुरु सेवा अत्यन्त दासभाव से करने का उपदेश है ॥ ४२ ॥

आचार्योपासनं शौचं स्थैर्य मात्मविनिग्रहः ॥ ४३ ॥

आचार्य की उपासना, शौच, स्थिरता, आत्म निग्रहआदि भगवत् प्राप्ति के साधन हैं ॥ ४३ ॥

* श्रीगुरुदीक्षा परत्व *

गुरुपदेश रहितस्स्वीय प्रज्ञा समन्वितः।
घृताज पुच्छ संत्यक्त गोपुच्छ इवमज्जति ॥ ४४ ॥
(नारद पंचरात्रे)

जिस ने गुरु से उपदेश नहीं लिया और अपने आप ही ज्ञानवान बन बैठा, उस की ऐसी दशा होती है कि जैसें किसी ने गंगाआदि नदी के पार जाने के लिऐ गऊकी पुच्छ को त्याग के, बकरी की पुच्छ को ग्रहण करने से पार नहीं पहुँच कर डूबजाता है ॥ ४४ ॥

विना श्रीवैष्णवीं दीक्षां प्रसादं सद्गुरोर्विना।
विना श्रीवैष्णवं धर्मं कथं भागवतोभवेत् ॥ ४५ ॥

बिना वैष्णवी दीक्षा और बिना सतगुरु कृपा और बिना वैष्णवधर्म के भक्त नहीं होसक्ता है ॥ ४५ ॥

अदीक्षितस्यवामोरु कृतं सर्वंनिरर्थकम्।
पशुयोनि मवाप्नोति दीक्षाहीनो मृतोनरः ॥ ४६ ॥

जो दीक्षित नही है उसका धर्मादिक कियाहुआ सब निष्फल है, दीक्षा से हीन मनुष्य मरने पर पशुयोनि को पाता है ॥ ४६ ॥

महाकुल प्रसूतोपि सर्व यज्ञेषु दीक्षितः।
सहस्र शाखाध्यायीच न गुरुः स्यादवैष्णवः ॥ ४७ ॥

महाकुलोत्पन्न सर्वयज्ञों में दीक्षित और सहस्र शाखाध्यायी ब्राह्मण भी अवैष्णव होने पर गुरु नहीं होसक्ता ॥ ४७ ॥

न तिथिं नच नक्षत्रं नमासादि विचारणा ।
दीक्षायाः करणं तत्र स्वेच्छाप्राप्तेचसद्गुरौ ॥ ४८ ॥

गुरुदीक्षा लेने में तिथी, वार, नक्षत्र, मासआदि का बिचार नहीं करना चाहिये, जब भी सत्गुरु प्राप्त होजाय तबही करलेना चाहिये ॥ ४८ ॥

कृष्णसेवा परं वीक्ष्य दंभादिरहितं नरम् ।
श्रीभागवत तत्वज्ञं भजेजिज्ञासुरादरात् ॥ ४९ ॥
(पद्मपुराणे)

कृष्ण सेवा परायण होय, दंभादि रहित होय, श्रीभागवत के तत्व का ज्ञाता होय, ऐसे गुरुको जिज्ञासू आदर पूर्वक सेवनकरे ॥ ४९ ॥

(उपनयनसंस्कार तथा दीक्षासंस्कारव्याख्या भाषा)

जैसा उपनयन संस्कार का चिन्ह यज्ञोपवीत है, एसाही दीक्षा संस्कार का चिन्ह माला तिलक है, जैसा उपनयन द्विजत्व का द्योतक है, माला तिलक वैष्णवत्व का द्योतक है, जैसा उपनयन बिना यज्ञ श्राद्धादि का अधिकार नहीं है, एसाही माला तिलक बिना भजन, ध्यान, उपासना, का अधिकार नहीं है, इसी से दीक्षा संस्कार में माला तिलक धारण कराया जाता है, और दीक्षित पुरुष उनको जनेऊ की समान नित्य धारण करते हैं, जिनपुरुषों को यज्ञोपवीत लेने की रुचिहोती है, उन्हों को दीक्षा के समय माला तिलकआदि वैष्णव चिन्हों के साथ श्रीगुरु यज्ञोपवीत भी देदिया करते हैं, वेद कर्म में

गायत्री मन्त्र से अधिकार होता है, ऐसे ही भगवत भजन अधिकार भगवत मन्त्र उपदेश से होता है।

॥ दोहा ॥

गायत्री के मंत्र ते, वेद कर्म अधिकार।
प्रेम परा गुरु मंत्र ते, प्रगट सरस निरधार ॥ ५२ ॥

आचारो धर्ममार्गश्च गुरुर्मंत्रश्च देवता।
दम्पत्यपत्यभृत्याद्यै रेकीकृत्यमहत्फलं ॥ ४८ ॥

दम्पति (स्त्री पुरुष) अपत्य (पुत्र पुत्री) भृत्य (सेवक) को आदिदे और चाकर प्रभृति एक होय स्मृत्युक्त आचार करें तथा एक होकर कर्माचरण करें, उनको बड़ा फल प्राप्त होता है और सब एकही गुरु पास उपदेश अर्थात मंत्रग्रहण करें, और एकही देवका एक होकर सेवन करें तो बड़ाफल होता है, भाई बहिन भाव एक उदर में उत्पन्न होने से होता है, एक गुरुसे दीक्षा लेने से भाई बहिन का नाता शास्त्रोक्त सिद्ध नहीं माना गया है ॥ ४८ ॥

* अथ षड्विधाशरणागति वर्णन *

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीतिविश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा।
आत्मनिक्षेप कार्पण्ये षड्विधाशरणागतिः ॥ ४६ ॥

॥ दोहा ॥

आनकूल संकल्प कर, प्रतिकूल्य को त्याग।

रक्षा को विश्वास कर, गोप्ता वरणन लाग ॥ ५३ ॥
आत्मा को निक्षेप कर, कारपण्य यह मान।
षड्विधि सो वर्णन करी, सो शरणागति मान ॥ ५४ ॥

पहले तो अपने स्वामी को अनुकूल नाम प्रिय होय, उसही को अपनें मन में संकल्प करना, यह शरणागति का प्रथम अङ्ग है।

दूसरा अङ्ग यह है कि जो अपनें स्वामी को प्रतिकूल नाम अप्रिय होय, उस को वर्जन करना अर्थात् उस को कभी नहीं करना, यह शरणागति का द्वितीय अङ्ग है।

तीसरा यह है कि जब मैं स्वामी की शरण में जाऊंगा तब अवस्य मेरे स्वामी मेरी रक्षाकरेंगे ही इसमें सन्देह नहीं है ऐसा बिस्वास रखना, यह शरणागति का तृतिय अङ्ग है।

चौथा यह है कि प्रभुही हम सरीके पातितन के गोप्ता (रक्षक) हैं तब प्रभु मुजपतित की रक्षाकरेंगेही एसा निश्चय रखना, यह शरणागति का चतुर्थ अङ्ग है।

अपना धन देहआदि सर्वस्व स्वामी के समर्पण करना कि मेरा जो कुछ आत्माआदि है वो सब स्वामी के समर्पण है, यह शरणागति का पञ्चम अङ्ग है।

मन में ऐसा भाव होना कि मैं महापतित, अधमाधम सर्व साधन हीन हूं, मेरी कोई करनी ऐसी नहीं है, जो प्रभु मेरी शरणागति को अङ्गीकार करें, यदि मेरी करनी को देखें तो मेरा कहीं ठिकाना है, जो प्रभु अपनी और देख के निर्हेतुक कृपा कटाक्ष करेंगे तो ही मेरा उद्धार होगा, इत्यादिक कार्पण्य

(कृपणता) को मन में रखना, यह शरणागति का छठा अङ्ग है, यह (६) प्रकार के भाव ठीक ठीक होवें तब पूर्ण शरणागति होती है।

* श्रीगुरुदीक्षामंत्र उपदेश माहात्म्य *

मंत्रोपदेशमात्रेण नरोमुक्तश्च भारत।
पूर्वैश्चकोटिपुरुषैः परैः सार्द्धं हरेरहो ॥ ५२ ॥
कोटिजन्मार्जितान् पापान् मंत्रग्रहणमात्रतः।
मुक्ताः शुद्ध्यंतियत्पूर्वं कर्मनिर्मूलयंतिच ॥ ५३ ॥

मन्त्र उपदेश मात्रसे (हे भारत) मनुष्य मुक्त होजाता है, अपने समस्त पूर्वजों के साथ तथा आगे होनेवाले के साथ करोड़ों जन्म का पाप मन्त्र ग्रहणमात्र से दूर हो जाता है, और सब पूर्वका संचित कर्म निर्मूल हो जाता है ॥

* अथ पंचसंस्कार वर्णन *

॥ दोहा ॥

तिलक छाप अरु नामपुनि, माला मंत्रजु पांच।
संस्कार जब गुरु करें, तबहीं हरिजन सांच ॥ ५५ ॥

॥ चौपाई ॥

श्रीतिलक मस्तक पर राजै * तुलसी की गलमाल बिराजै ॥

तिलक, माला, मुद्रा, नाम, मंत्र, यह पंच संस्कार वैष्णवी हैं, सत्गुरु से जबतक यह नहीं प्राप्त करे, वैष्णव नहीं कहा जाता है ॥ १२ ॥

(लीलासागर ग्रन्थे)

* तिलकाकार वर्णन *

ललाटे ज्योतिषाकारं बाहुभ्यां वंशपत्रकम् ।
हृदये कमलाकारं अन्यत्र तुलसीदलम् ॥ ५४ ॥

(पद्मपुराणे)

ललाट में ज्योती की सूरत का, भुजो में बांस का पता जैसा, हृदय में कमलाकार और जगह तुलसी का पत्र जैसा, तिलक करना चाहिये ।

॥ दोहा ॥

पीत श्री मस्तक विषै, वंशपत्रिका बाहु ।
तुलसी दल अङ्ग अङ्ग मैं, ताम्बूल हृदमाहु ॥ ५६ ॥
यहि आक्रितसों दीजिये, द्वादश अङ्गन बीच ।
भोगप्रसादी पाइये, पुनि पुनि होइ न मीच ॥ ५७ ॥
चिन्ह चँद्रिका नाम प्रिया, श्रीतिलक बिच भाल ।
मुखसे नित जपिये सदा, कुंजबिहारीलाल ॥ ५८ ॥

(श्रीरामसखी कृत, भक्तीरसमंजरी ग्रन्थे)

श्रीरामसखी कथनानुसार मस्तक में ज्योती की सूरत का मनोहर उर्द्ध पुंड्र पीत श्री राधिकाजी का रूप है । यही तिलक श्रीशुकमुनी ने शुकतार स्थान पर गुरुदीक्षा के समय श्री स्वामी श्यामचरणदासाचार्य्य महाराज के मस्तक पर किया, और श्रीतिलक व ज्योती रेखा इस का नाम कहा, यह तिलक ज्योती रूप ब्रह्मका स्वरूप है । राज्याभिषेक व विवाहादि मङ्गल समय में लोक इसी आकार की श्री को धारण करते हैं, यह सनातन आचार है ॥

जब के श्री श्यामचरणदासाचार्य्य महाराज भूतल में मोजूद थे, उस समय कई देश देशान्तर के ब्राह्मण पंडित मिलके जयपुर के महाराजाधिराज ईश्वरीसिंह के पास जाकर इसही तिलक के वास्ते वड़ा भारी आक्षेप किया, उस के उत्तर में ईश्वरीसिंह जो वड़े भारी विद्वान वेद पुराणों के ज्ञाता थे, यौं कहा—

॥ चोपाई ॥

तिन मुस्काय कहा समुझाई ❀ श्री तिलक वेदन में गाई ॥
तुलसी माल पीतपट रंगा ❀ तीनों वाने आदिसुअंगा ॥
व्याह सगाई वैठ सु राजा ❀ सवजगसाजतिलकयहिसाजा ॥
कलियुग अप अप मते चलावें ❀ अपर थापिके याहि मिटावें ॥

(श्री जोगजीतजी कृत लीलासागर ग्रन्थे)

* श्रीतिलक परत्व वर्णन *

मस्तके ज्योतिराकार मूर्द्ध पुण्ड्र मनोहरम् ।
भ्रूमध्ये यल्ललाटान्तं चन्दनस्य श्रियात्मकम् ॥ ५५ ॥

मस्तक में ज्योति आकार मनोहर उर्द्ध पुण्ड्र तिलक, भोंह के वीच सें ललाट तक चन्दन का करना और मनोहर सुन्दर श्रीराधिकाजी का स्वरूप है ॥ ५५ ॥

तत्तिलकं वैष्णावानां वेदोक्त मतिशोभनम् ।
ज्योतिः स्वरूप ब्रह्मेति वैशिष्ट्य मवगम्यताम् ॥ ५६ ॥

वही तिलक वैष्णवों का वेदोक्त अति सुन्दर ज्योतिस्वरूप ब्रह्मरूप विशेष करके जानना चाहिये ॥ ५६ ॥

राज्याभिषेकसमये विवाहादिसुमङ्गले ।
धारयन्तिश्रियं लोका इत्याचारः सनातनः ॥ ५७ ॥

राज्याभिषेक के समय और विवाहादि मङ्गलीक कार्यों में लोक इस श्रीतिलक को धारण करते हैं, यह आचरण परम्परा से चला आता है ॥ ५७ ॥

फलमाप्नोतिपुरुषो लौकिकं पारलौकिकम् ।
तिलकेनामुनासिद्धिः सौकर्येण प्रजायते ॥ ५८ ॥

इस तिलक से पुरुष लौकिक परलौकिक फलको प्राप्त करलेता है और इस तिलक से सिद्धी भी अनायास ही प्राप्त होजाती है ॥ ८५

श्रीरूपतिलकं प्राहु र्वेदोक्तं हि सनातनम् ।
ततः सन्धारितं चैतद्ब्रह्मणा नारदादिभिः ॥ ५९ ॥

ये तिलक श्रीरूप अर्थात् श्रीराधिकास्वरूप श्रीलक्ष्मी और सौभाग्यवर्द्धन करता और वेदोक्त सनातन है, इसही से ब्रह्मा तथा नारदादिक मुनियों ने इस को धारण किया है ॥ ५१ ॥

ज्योतिरूपाकृतिपुण्ड्रं मस्तके रचितं शुभम् ।
चन्द्रिका चिन्हसंयुक्तं राधानामसमन्वितम् ॥ ६० ॥

ज्योतिरूप आकृति वाला तिलक मस्तक में बनाया हुवा चन्द्रिका चिन्ह के संयुक्त तथा श्रीराधिकाजी के नामके सहित होता है ॥ ६० ॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैतिदैवं तदु सुप्तस्य तथैवेतिदूरङ्गम
ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मेमनः शिवसङ्कल्पमस्तु ६१

(अथर्ववेद रुद्रजापे अ० ७ श्रुते)

संसार रूपी प्रपञ्च से जागे हुए जिस देव को दुःख से प्राप्त

होते हैं, सोते हुए को भी इसही प्रकार ज्योतीरूप होनेसे वो देव दुःख करके प्राप्त होने योग्यहै, वही एक ज्योतीरूप परमात्मा से मेरा मन कल्याण का सङ्कल्प करता है ॥ ६१ ॥

तस्माज्ज्योतिरभूद्द्वेधा राधामाधवरूपकम् ॥ ६२ ॥

वोही एक ज्योति राधा और माधव रूप दो प्रकार होतेभये ॥ ६२ ॥

(गोपालसहस्रनामें)

ललाटे केशवंध्याये न्नारायणमथोदरे ।
वक्षस्थले माधवं तु गोविन्दं कण्ठकूपके ॥ ६३ ॥
विष्णुं च दक्षिणे कुक्षौ तद्बाहौ मधुसूदनम् ।
तृविक्रमं कंधरेतु वामनं बाम पार्श्वके ॥ ६४ ॥
श्रीधरं बाम बाहौ तु हृषीकेशं तु कंधरे ।
पृष्ठे च पद्मनाभं च कट्यां दामोदरंन्यसेत् ।
तत्प्रक्षालन तोयं वासुदेवं तु मूर्द्धनि ॥ ६५ ॥

ललाट में तिलक करने के समय केशव भगवान का ध्यान करे, उदर में नरायण का, वक्षस्थल में माधव भगवान्‌का, कण्ठमें गोविन्द, दहिने पसवाड़े में बिष्णु, दहनी भुजापर मधुसूदन, दहने कंधे पर तृविक्रम, बायें पसवाड़े में बामन, बाये भुजापर श्रीधर, बाये कंधे पर ऋषीकेश, पीठमें पद्मनाभ, कटिमें दामोदर, हाथधोने का जल वासुदेव भगवान का ध्यान करके मस्तक पर चढावे ॥ ६३-६४-६५ ॥

वर्तिदीपाकृतिंवापि वेणुपत्राकृतिं तथा ।
पद्मस्यमुकुलाकारं तथैव कुमुदस्य च ॥ ६६ ॥

(पद्मपुराण उत्तरखण्डे)

दीपक की लोय जैसा तिलक करे वा बांस के पत्ते की मूरत का वा कमलकी पांखड़ी सदृश वा कुमुद के आकार का जैसा तिलक करे ॥ ६६ ॥

* श्रीतिलक के नाम *

श्रीदेवी प्रथमं नाम द्वितीयं अमृतोद्भवा ।
तृतीयं कमला प्रोक्तं चतुर्थं चन्द्रशोभना ॥ ६७ ॥
पंचमं च वरारोहा षष्ठं तु हरिवल्लभा ।
सप्तमं विष्णुपत्नीस्या दष्टमं वैष्णवी तथा ॥ ६८ ॥
नवमं शार्ङ्गिणी प्रोक्ता दशमं देवदेविती ।
एकादशं तु लक्ष्मी च द्वादशं सुरसुन्दरी ॥ ६९ ॥
एवं ध्यात्वान्तरालेषु हरिद्रां धारयेच्छ्रियम् ।
आरभ्य नासिकामूलं ललाटं तु लिखेन्मृदम् ॥ ७० ॥

* श्रीतिलक फलास्तुति *

तिलकं श्रीसदाश्रेयं पवित्रं पापनाशनम् ।
सर्वदाआयुरारोग्य सम्पत्तिभक्तिवर्द्धनम् ॥ ७१ ॥
(वैष्णवपद्धति)

श्री तिलक सदा कल्याण करने वाला है, पवित्र और पापनाशक है, सदा आयु, आरोग्य, संपत्ति और भक्तिवर्द्धन करनेवाला है ॥ ७१ ॥

* मुद्रा *

मुद्रा दो प्रकार की है, एक शीतल, दूसरी तप्त, दोनों में ही आचार्यों की संमति है ।

गोपीचन्दनमृत्स्नाभि लिखितं यस्यविग्रहम् ।
शंखचक्रगदापद्म तस्यदेहेवसाम्यहम् ॥ ७२ ॥
उर्द्ध्वपुण्ड्रस्यमध्यंतु हरिनामाक्षरंशुभम् ।
मुद्रादिनातुकर्त्तव्यं प्रीणातिजगदीश्वरः ॥ ७३ ॥
(स्कन्धपुराणे मार्गशीर्षमहात्म्यें)

जिसके शरीर पर गोपीचन्दन में बोरेहुए शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म के चिन्ह धारण हों उसकी देह में मैं ही बसताहूं। तिलक के बीच में हरिनाम की छाप गोपीचन्दन आदि से करने से जगदीश्वर भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ ७२-७३ ॥

यस्यान्तकाले मृदुगोपिचन्दनं
बाहोर्ललाटे हृदिमस्तके च ।
प्रयाति लोकं जगतां पतेर्मम
गोबालघातीसचब्रह्महास्यात् ॥ ७४ ॥

गोपीचन्दन जाके बाहु, ललाट, हृदय, मस्तक विषे मंडित होय, सो मनुष्य गऊका, बालक का, ब्राह्मण को, मारने वाला होय तो भी, जगतका स्वामी ऐसा मैं मेरे लोकको प्राप्त होता है ॥ ७४ ॥

* तुलसीमाला धारणकरनेका प्रमाण *

तुलसीकाष्ठजांमालां कण्ठस्थांवहतेतुयः ।
अप्यशौचोप्यनाचारो मामेवैति न संशयः ॥ ७५ ॥
(स्कन्धपुराणे)

तुलसी की माला कण्ठ में धारण करने वाला मनुष्य यदि आचार रहित और अपवित्र भी होय, तो भी मुझको ही प्राप्त होता है, इस में संदेह नहीं है ॥ ७५ ॥

* दीक्षा मंत्र *

श्रीमन्त्रराज चूड़ामणी जो श्री शुकसम्प्रदाय में दान किया जाता है वह साक्षात् भगवद स्वरूप है, अर्थात् श्रीगुरुमंत्र नहीं देते हैं, मानों श्रीभगवान को ही शिष्य के हृदय में बीज रूप से बोते हैं, जितने मंत्र जिस २ देवता के हैं, वे सब उन देवताओं के स्वरूप के बीज भूत हैं, ऐसे ही सबही शास्त्रों ने माना है, उन मन्त्रो का जप करने से, जैसे बीज से वृक्ष प्रकट होजाता है, इसही तरह वो इष्टदेव साक्षातकार होजाते हैं, बगैर मंत्रके अर्थ जाने भी जो जप करते हैं, उनको मंत्र अपना प्रभाव जरूर दिखलाता है।

* चौपाई *

चूड़ामणी मंत्र उचारो * महाराज सुन हिय में धारो ॥

(श्रीजोगजीतजी कृत लीलासागर ग्रन्थे)

यथाऽगदंवीर्यतम मुपयुक्तंयदृच्छया।
अजानतोप्यात्मगुणं कुर्यान्मंत्रोप्युदाहृतः ॥ ७६ ॥

(श्रीमद्भागवत षष्टमस्कन्धे)

जैसे बड़ी शक्तीवाली दवा बिना जाने भी लेली जाय तो अपना गुण अवश्य दिखलाती है, ऐसे ही मन्त्र भी बिना अर्थ जाने जपकरने पर भी अपना प्रभाव निश्चय दिखलाता है ७६

{ मंत्र चूड़ामणी के लिए संमोहनतन्त्र
के गोपालसहस्त्रनाम में लिखा है । }

सप्तकोटि महामंत्र शेखरो देव शेखर ॥ ७७ ॥

(गोपालसहस्त्रनामें)

श्रीशुकमुनी महाराज ने जब श्री श्यामचरणदासाचार्य महाराज को "शुकतारस्थान पर अपनी शरणागति में लिये तो परमहंस मार्ग उपदेश में भी" मंत्रदान करने की परम आवश्यक्ता समझ कर मंत्रोपदेश आदि किया ।

* नाम *

दीक्षा के समये गुरु शिष्य को भगवद्संबन्धी नाम दान करते हैं, जैसे श्रीश्यामचरणदासजी महाराज का जन्म नाम "रणजीत है" श्रीशुकमुनी ने दीक्षा समय श्यामचरणदास नाम दानकिया ।

ओङ्काररेणान्तरितं येजपन्तिगोविन्दस्यपञ्चपदंमनुम्
तेषामसौदर्शयदात्मरूपंतस्मान्मुमुक्षुरभ्यसेन्नित्यशांत्यै

(अथर्ववेद गोपालतापनी उपनिषद मंत्र २५)

ओंकार से अन्तरित करके गोविन्द के पंचपद मंत्र का जो जप करते हैं, उनको भगवान अपना रूप का दर्शन कराते हैं, इस कारण नित्य शान्ति के लिए मुमुक्षु यानी मोक्षकी इच्छा करने वाला मनुष्य इस मन्त्र का जप नित्य करें ।

॥ दोहा ॥

नाम इष्ट संबंध को, मंत्र इष्ट को जान ।
काम बीज श्री आदिदे, अधिकारी दे दान ॥ ५१ ॥
ना तो साधारण सबे, दीजो परजो मंत्र ।

वे रीझेंगे प्रेमसे, नहीं वेद विधि तंत्र ॥ ६० ॥

(भक्तिरसमंजरी ग्रंथे श्रीमहाराज वचन)

एतस्यैव यजनेनचन्द्रध्वजोगतमोहमात्मानं। वेदे ७६

(गोपालतापनी उपनिषद मंत्र २१)

इसही मंत्रके जप करने से शिवगत मोह होकर सिद्ध हुए, (अपने रूपको जाना)

* अथ उपासनारीति से पञ्चभूत शुद्धि बर्णन *

॥ दोहा ॥

ब्रज जमुना रज भूमि शुचि, चरणामृत जलपान ।
तेज शुद्धि तुलसी समझ, वायु भक्त संगमान ॥ ६१ ॥
श्रीहरि गुरू दरशन किये, होय शुद्ध आकास ।
पंच भूतकी शुद्धि विधि, समझो सहित हुलास ॥ ६२ ॥

(ब्रजरज महात्म्ये)

षष्टिवर्षसहस्राणि मयातप्तं तपः पुरा ।
नंदगोपब्रजस्त्रीणां पादरेणूपलब्धये ॥
तथापिनमयाप्राप्ता तासांवैपादरेणवः ॥ ८० ॥

श्रीब्रह्माजी भृगुआदि ऋषिश्वरों प्रति कहते हैं कि मैंने साठ हजार वर्ष तक गोपीजन की चरण रज प्राप्त करने के लिए तपस्या करी, परन्तु फिरभी मुझको प्राप्त नहीं हुई ॥ ७३ ॥

(आदिपुराणे)

तद्भूरिभाग्यमिहजन्मकिमप्यटव्यां
तद्गोकुलेपिकतमांघ्रिरजोभिषेकम् ॥ ८१ ॥

(श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध पूर्वार्धे, ब्रह्मस्तुति)

मेरा ऐसा परम भाग्य हो कि मैं श्री वृन्दावन में कीट भृंगुआदि कोई भी योनि प्राप्त करके श्री गोपीजनों की चरण रज का अपने शरीर पर अभिषेक करूं। ब्रजरज तथा ब्रजकी तो अपार महिमा है ॥ ८१ ॥

{श्रीयुतश्यामचरणदासाचार्य्यमहाराज ने
ब्रज चरित्र में वर्णन किया है।}

॥ चोपाई ॥

चिंता मेटन भूमि बखानी * रणजीतमीत जहां द्रुमाविनानी ॥
दिव्य वृन्दावन दिव्य कालिंदी * देखे सो जीते मन इन्द्री ॥
कालिंदी महिमां सुनु भ्राता * सहस गंगके फलकी दाता ॥

॥ दोहा ॥

वृन्दावन सेवन करे, अमरलोक को जाय।
इन्द्री जीते हरिभजे, प्रेम प्रीत के भाय ॥ ६१ ॥
ब्रह्मादिक कल्पत रहैं, वृन्दावन के हेत।
सुधि आवे ब्रज भूमिकी, विसरजायसब चेत ॥ ६२ ॥

(भक्तिसागर ग्रन्थे)

* ब्रज भूमि तथा वृन्दावन महिमा *

निष्काम्याः सकाम्या भूगोलचक्रे सप्तपुर्यो भवन्तितासांमध्ये साक्षाद्ब्रह्मगोपालपुरी हीति। चक्रेणरक्षिताहि मथुरातस्माद्गोपालपुरीभवति ८२

(अथर्ववेद गोपालतापनी उपनिषद उत्तरार्द्ध, मं० २८—२९)

निष्काम और सकाम भूगोल चक्र में सात पुरी हैं, उन में साक्षात ब्रह्म गोपालपुरी है। जो भगवान के सुदर्शन चक्र से

रक्षित है, इसही कारण गोपालपुरी कहलाती है ॥ ८२ ॥

मथुरायां विशेषेण मांध्यायन् मोक्षमाप्नुते ॥ ८३ ॥

(गोपाल तापनी उत्तरार्द्धे, मं० ५९)

श्रीभगवान कहते हैं मथुरा में मेरा ध्यान करने से जल्दी मोक्ष प्राप्त होती है ॥ ८३ ॥

मथ्यते तु जगत्सर्वं ब्रह्मज्ञानेन ये नवा ।
तत्सार भूतं यद्यस्यां मथुरासा निगद्यते ॥ ८४ ॥

(गोपालतापनी उत्तरार्द्धे मं० ६३)

जिस ब्रह्मज्ञान करके जगत मथन किया जाता है, उसका सार भूत जहां प्राप्त है, सो मथुरा कहलाती है ॥ ८४ ॥

{ तुलसीमाला चरणामृत व शालिग्राम अर्चन महात्म्य }

ये कण्ठ लग्न तुलसी नलिनाक्ष माला
ये बाहु मूल परि चिन्हित शङ्खचक्रा ।
येवा ललाटपटले लस दूर्ध्व पुंड्रा-
स्तेवैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयंति ॥ ८५ ॥

तुलसीकाष्ठसंभूतां प्रेतराजस्य दूतकाः ।
दृष्ट्वा नश्यंतिदूरेण वातोद्धूतो यथाघनः ॥ ८६ ॥

धारयंति न ये मालां हेतुकाः पापबुद्धयः ।
नरकान्ननिवर्त्तन्ते दग्धाः कोपाग्निनाहरेः ॥ ८७ ॥

कण्ठे शिरसि बाहुभ्यां कर्णयोः करयोस्तथा ।
विभृयात्तुलसींयस्तु सज्ञेयोः विष्णुनासम ॥ ८८ ॥

ब्राह्मणानां यथा संध्या गृहिणां पितृतर्पणम् ।
अदक्षिणोयथायज्ञो मालाहीनातु वैष्णवा ॥ ८९ ॥
तुलसीमालिकां धृत्वा यो भुंक्ते गिरिनंदिनि ।
सिक्थे सिक्थे लभेतपुन्यं वाजपेय शताधिकम् ॥ ९०
स्नानकालेषु यस्याङ्गे दृष्यते तुलसीशुभे ।
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातोसः न संशयः ॥ ९१ ॥

(पद्मपुराणे, शालिग्राममहात्म्ये)

शालिग्रामशिलायत्र नित्यंतिष्ठतिवेश्मनि ।
तत्रसर्वाणि तीर्थाणि संतिसर्वैः सुरैरपि ॥ ९२ ॥
अंतकालेपि यस्यास्ये शालिग्राम शिलोदकम् ।
क्षिप्यतेपापिनोऽपीह सयाति परमांगतिम् ॥ ९३ ॥
यदियुक्तो महापापैर्जन्मकोट्य शुभोद्भवैः ।
मुच्यतेनात्रसंदेहः शालिग्रामशिलार्चनात् ॥ ९४ ॥
शालिग्राम शिलातोयं यः पिबेद्बिन्दुनासमम् ।
मातुस्तैन्यं पुनर्नैव सभवेन्मुक्तिभाक्पुमान् ॥ ९५ ॥
अशौचं नैव विद्येत सूतके मृतके पिवा ।
येषांपादोदकंमूर्द्ध्नि कृतंविष्णुशिलोद्भवम् ॥ ९६ ॥

(पद्मपुराणे)

शयने भोजने स्नाने मलमूत्र विसर्जने ।
नत्याज्यातुलसीमाला त्यागेतुब्रह्महाभवेत् ॥ ९७ ॥

तुलसीरहिताकंठे ये नरामूढमानसाः ।
अन्नंविष्ठाजलंमूत्रं पायसंरुधिरं भवेत् ॥ ९८ ॥
प्रसादमालिकाधारी पुनातिभुवनत्रयम् ।
प्रणमन्तिसुरास्तस्मै शिवशक्रयमादयः ॥ ९९ ॥
तुलसीमंजरीभिर्यः कुर्याद्धरिमुदार्चनम् ।
नसगर्भगुहांयाति मुक्तिभागीभवेन्नरः ॥ १०० ॥

जो कंठ में तुलसी की माला धारण करते हैं, जिनके बाहुमूल में शंख और चक्र के चिन्ह हैं, जो ललाटपटल में उर्द्ध पुंड्र तिलक धारण करते हैं, वे वैष्णव विश्व को शीघ्रही पवित्र करते हैं।

तुलसी की माला को देख कर दूरसेही यमदूत भगजाते हैं, जैसे पवन से मेघ।

जो हेतुवादी, पापबुद्धि तुलसी माला नहीं धारण करते हैं, वे श्रीहरि की कोपाग्नि से दग्ध होकर नरक से नहीं लोटते हैं।

कंठ में, शीश पर, बाहु में, कानों में और हस्त में तुलसी की माला धारण करते हैं, वे विष्णु समान हैं।

ब्राह्मण के लिये जैसे संध्या है, गृहस्थी के लिए पित्रीश्वरों का तर्पण आदि, यज्ञ में जैसी दक्षिणा, ऐसेही वैष्णव के लिये तुलसी माला है।

हे पार्वती! तुलसी माला धारण करके जो भोजन करता है तो ग्रास २ में १०० सो बाजपेय यज्ञों से भी अधिक फल मिलता है।

स्नान काल में जिस के अङ्ग में तुलसी की माला धारण रहती है, उस ने गङ्गा आदिक सर्व तीर्थों में स्नान करलिया, इस्में संदेह नहीं।

जिस के मकान में श्रीशालिग्राम बिराजमान हैं, वहां सब देवताओं सहित सब तीर्थ निवास करते हैं ।

अन्तकाल में जिसके मूंह में श्रीशालिग्राम चरणामृत डाल दियाजाय, वो पापी होने पर भी परमगति को प्राप्त होता है ।

यदि करोड़ों जन्मों के भी महापापों से युक्त हो तो भी शालिग्राम अर्चन से सर्व पापों से मुक्त होजाता है, इसमें संदेह नहीं है ।

जो बिन्दु मात्र शालिग्राम चरणामृत पान करता है वो फिर माता के जन्म लेकर स्तन पान नहीं करता और मुक्त होजाता है ।

जिसने भगवान का चरणामृत मस्तकपर धारण किया उसके सूतक तथा मृतक का भी अशौच नहीं रहता है ।

शयनकाल, भोजन, स्नान, मलमूत्रत्याग, के समय में भी तुलसी माला न त्यागनी चाहिये, त्यागने से ब्रह्मघाती होता है ।

जो मूढबुद्धि तुलसी करके रहित है, उनके लिये अन्न भिष्ठा रूप है, जल मूत्र रूप और दुग्ध की सामग्री रुधिर है ।

प्रसाद और माला ग्रहण करने वाला त्रिभुवन को पवित्र करता है, शिव, इन्द्र, यमादिक सब उसको प्रणाम करते हैं ।

तुलसी की मंजरी से जो श्रीहरि का पूजन करता है वो गर्भवास में फिर नहीं आता है, मुक्ति का भागी होजाता है ।

॥ दोहा ॥

गुरुद्वारो चरन्दास को, पीतवसन अभिराम ।
तुलसी कण्ठ ग्रीवा जुगल, माल ललित छविधाम ॥ ६३ ॥

नित्य नियमविधि व दिनचर्या व प्रत्यक्ष श्रीमूर्ति सेवाविधि वर्णन ।

वैष्णव का सबसे प्रथम कर्तव्य यह है कि बहुत सिदोसी निद्रा त्यागकर स्नानकर अथवा केवल हाथ पांव धोकर कुल्ला आदिक करके समाहित हो के जुगल सरकार का ध्यान कीर्तन व पद गान आदिक करे, आचार्यों की विनती तथा स्तुति के स्तोत्र आदिक पाठ करै।

॥ दोहा ॥

श्रीशुक अष्टक जानिये, अष्टोत्तर हरि नाम।
अष्टोत्तर आचार्य्यप्रभु, नाम जपे सुख धाम ॥ ६४ ॥
अमरलोक लीला ललित, ब्रज चरित्र पढ भोर।
सायं प्रातसु आरती, गावे बिबिधि निहोर ॥ ६५ ॥
श्रीमूर्ति अरु चित्रपट, संनिधि हरिके पाठ।
सरससमाधुरी भाव से, करि हैं बैष्णव ठाठ ॥ ६६ ॥

उत्थायापररात्रान्ते प्रयताः सुसमाहिताः।
स्मरांतेममरूपाणिमुच्यन्तेह्यनसोऽखिलात् ॥१०१॥

(श्रीमद्भागवत अष्टमस्कन्धे चतुर्थ अध्याये)

पिछली रात उठ करके जो मन तथा इन्द्रियों को एकाग्र करके मेरे रूपों का ध्यान सुमरण करता है वह सब पातकों से निवृत्त हो जाता है ॥ १०१ ॥

॥ दोहा ॥

जागैना पिछले प्रहर, करे न हरि मुख जाप।
पोह फाटे सोवत रहै, ताको लागत पाप ॥ ६७ ॥

जन्म छुटै मरना छुटै, आवागमन छुट जाय।
एक पहर की रातसों, बैठा हो गुणगाय ॥ ६८ ॥

(भक्तिसागर)

पश्चात् दक्षिण दिशाकी तरफ शौचको जाय, पृथ्वी को तृण-आदिक से आच्छादित करके शौच क्रिया करै, सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा के तथा वायु के सन्मुख बैठकर न करै, वृक्षादिकों की जड़में भी न बैठे, देवालय, कूप, मठ आदिक के समीप न बैठे, एक वार लिङ्ग इन्द्री को मिट्टी और जलसे धोके तीन बार गुदा इन्द्री को, सप्तवार बांये हाथको और इक्कीस वार दोनों हाथों को।

एका लिङ्गे गुदे तिस्रः दश वामकरे तथा।
उभयोसप्तसप्तांच पादाङ्गुलि त्रिभिः त्रिभिः ॥१०२॥

(आचारादर्शः)

तत्पश्चात् सूकरने जिसको ढाही या विदीर्ण की है, ऐसी मृत्तिका को अङ्गमें लगावे और यह मन्त्र पढे।

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्व संचितम् ॥ १०३ ॥

मृत्तिका लगाकर किसी जलाशय पर जाके स्नानकरे, कूप, सरोवर, नदी, यह उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है, गृहमें स्नान करना सबसे अधम है, स्नान के समय गङ्गा, जमुना आदिकों का आवाहन करे और भाव उनमें ही स्नान करने का करे, फिर इस मन्त्र से मन्त्र स्नान करे।

अपवित्रःपवित्रोवा सर्वावस्थांगतोऽपिवा।
यःस्मरेत्पुण्डरीकाक्षं सवाह्याभ्यन्तरशुचिः ॥१०४

अथवा मन्त्रराज से ही अङ्ग को प्रोक्षण करे और तिलक, मुद्रा धारण करके जमुनाजल, गङ्गाजल, चरणामृत, तुलसी ब्रजरज भक्षण करके तथा अंगों के लगाके बिन सिलेहुए धोती और उपरैना ये दो वस्त्र धारण करके भगवत् सेवा अर्थ मन्दिर में प्रवेश करे ।

एक वस्त्र से ही शौच जाना तथा भगवत सेवा करना अपराध जनक है, मन्दिर में प्रवेश करते समय दण्डवत करै, फिर स्तुति तथा घंटानाद करके, युगलसरकार को जगावे ।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठगोविंद त्यजनिद्रांजगत्पते ॥ १०५ ॥

रात्रिकी बासी माला आदिक दूर करे, फिर पार्षद आदि मांज के तथा धोके शुद्ध करे, सब सेवासामग्री एकत्र करके एकाग्र-चित्त हो के सेवा करे, बार बार में उठे नहीं, मौन रखे, बासी पदार्थ अलग न करने से बड़ा भारी सेवापराध होता है ।

तांबेकी तांबड़ी तथा चांदीकी में अष्टदल कमल केशर चन्दन का बनावे, उसके ऊपर वस्त्र बिछावे, तुलसीपत्र व पुष्प डाले, फिर प्रिया-प्रीतम को उस में विराजमान करके शङ्ख से मन्त्र बोलते हुए स्नान करावे, तीनवार या सातबार, पश्चात् बारीक वस्त्र से अंग अंगोछ कर सिंहासन पर पधरावे, यदि चित्रहो तो केवल वस्त्र सेही मार्जन कर स्नान का भावही करे, तत्पश्चात् चन्दन से तिलक आदिक कर पुष्प माला व तुलसी दल अर्पण करे, द्वादशी के दिन तुलसी उतारने का दोष है, इसलिये एकादशी की सांझ को उतारले, समग्र सृङ्गार विधिपूर्वक प्रेम से करे, समय २ पर ऋतु अनुकूल भोग धरे, प्रथम मङ्गल भोग, द्वितीय

कलेऊ, तृतीय शृङ्गार भोग, चतुर्थ राजभोग, पंचम उत्थापन भोग, षष्ट संध्या भोग, सप्तम सैनभोग । भोग धरते समय शङ्खमें जल भरके भोगकी सामग्री को मन्त्र बोलके प्रोक्षण करे, तुलसी दल हरएक सामग्री पर डाले, विनय करके टेरा करे, घण्टा नाद करे, घण्टा में सब बाजे तथा ॐ की धुनि शास्त्रों ने मानी है । भोग लगाते समय भोगकी भावना करे और मन्त्रजप अथवा आचमन कराके बीड़ी अर्पण करे, फिर आर्ति करे, बत्ती की आर्ति करे तो २ से कम बत्ती नहीं होनी चाहिये, ५ हों, ७ हों, या ९ हों, अथवा कपूर की आर्ति करे । दो दफै चरण पर वारे, एक वार नाभि पर, दो वार वक्षः स्थल पर, दो वार मुखारविन्द पर और सप्त वार सर्व अङ्गों पर । इसही प्रकार शङ्ख से करे, फिर पुष्प वृष्टि करे, अस्तुति-गान करे, तत्पश्चात् साष्टाङ्ग दण्डवत करे, दण्डवत का भाव सर्व समर्पण का है ।

द्वितीय प्रहर में शुद्धता से बनी हुई रसोई से राजभोग आरोगावै, पुष्प आरती उतारे, और माला आदिक उतार कर सैन करावे, ज्यादा शृङ्गार हो तो राजभोग धरते समय उतार देना चाहिये ।

ठाकुरजी की सैन के पश्चात् महाप्रसाद सेवन करे, वैष्णवको चाहिये कि भगवत प्रसाद के सिवाय कुछ भक्षण न करे, अनोसर के समय विरह की भावना करे । दोघड़ी दिन रहनेपर भगवानका उत्थापनकरे, गरमी होयतो स्नान करावे और ऋतुमें सुखादिक प्रक्षालन कराके फलादिक भोग धरे, बीड़ी आरोगावे व पुष्प आर्ति करे, जलवारे तत्पश्चात् भगवत के सान्निध्य में कीर्तन-गान

करे, फिर संध्या समय मिष्ठान् भोग धरके सन्ध्या आर्ति करे, स्तुति आदिक गानकरे, ९ बजे रात्रि को सैंनभोग धरके सैंन करावे। इस प्रकार अष्टयाम की सेवा व भावना करना वैष्णव का मुख्य धर्म है, जहांतक शक्ति हो शरीर से भी अष्ट प्रहर शुद्ध रहने काही यत्न रखे, नास्तिक विमुखों से कभी वार्तालाप भी न करे, व्यर्थ समय न खोवे, देह कर्म अथवा लौकिक व्यवहार जितना बहुत जरूरी है उतनाही रखे ज्यादा न बढ़ाले। इसही प्रकार द्रव्योपार्जन के अर्थभी रात दिन चक्कर में न फिरे, संतोष धारण करे, नहीं तो भगवत भजन में बड़ी बाधा और विघ्न उत्पन्न होजावेगा, इसलिए यथा लाभ संतुष्ट रहकर श्रीयुगलसेवा सुमरण कर परम प्रसन्न रहै।

* मानसोपचार सेवा नित्यनेमविधि वर्णन *

॥ चौपाई ॥

कही कि पहिले करिअस्नाना * फिरबैठे नीके अस्थाना॥
चन्दन घसकर माही लीजे * फेर गुरूका ध्यानजु कीजे॥
ध्यान बंधे जब शीश नवावे * गुरुके मस्तक तिलक चढावे॥
सबही विधि सो पूजा करै * फिर चरणों पर माथाधरै॥
दहिने सात परिक्रमा कीजे * बैठ दण्डोत चरण चितदीजे॥
फिर कहिये जोड़ें दोउहाथ * भक्तिदान वर दीजे नाथ॥
दीन होय करि ऐसे बोलै * ताके पीछे नैना खोलै॥

॥ दोहा ॥

फिर अपने टीका करै, तनमें द्वादस ठांन।
अचवन लेकरि हाथयो, कीजे प्राणायाम॥ ६१॥

सौलह ओंकारले, पूरक कीजे धार।
चौसठ ओंकार को, कुम्भक रखो संभार ॥ ७० ॥
फिर ओं बत्तीसही, रेचक सहज उतार।
प्रणायाम की तीनविध, यह तुम लेहु निहार ॥ ७१ ॥
ऐसे प्राणायाम ही, कीजै चौविस बार।
सम्पूरण नहिं होसकै, तो आधाजु विचार ॥ ७२ ॥

॥ चौपाई ॥

पूरक बायें स्वर सों लीजै * दहिने स्वर सों रेचक कीजे ॥
फिर दहिने स्वर पूरक धारो * बायें स्वर रेचक निरवारो ॥
ऐसे बारी बारी करिये * सुरति निरति त्रिकुटीमें धरिये ॥
ताके पीछे और संभारो * श्रीकृष्ण का ध्यान विचारो ॥
सुन्दर मन्दिर नीके रचिये * गोल सिंघासन तामें सजिये ॥
पाये अष्ट कँवल आकारो * कञ्चन का नग जटित निहारो ॥
तापे श्रीराधा-श्यामसुजाना * वा छविको निरखे करिध्याना ॥
फूलन की माला पहिरावे * चन्दन तिलक ललाट चढावे ॥
सकल सौंज सों पूजा सरै * तन मन धन न्योछावर करै ॥
दे परिक्रमा शीश नवावे * चरणन सों दोउ नैन छुवावे ॥

॥ दोहा ॥

कहै कि यह किरपा करो, लीजै मोहि उबार।
भक्ति आपनी दीजिये, प्रभुजी बारम्बार ॥ ७३ ॥

॥ चौपाई ॥

वन्दन करि पीछे हटि आवै * तहां बैठ टकटकी लगावै ॥
निरखै छवि जबलग मनभावै * बारम्बार बारने जावै ॥

नैन छकैं अरु हिया सिरावे ❋ ऐसा ध्यान किये सुखपावै ॥
जाके पीछे दसही माला ❋ गुरु मंतर जप होय निहाला ॥
ताके पीछे तर्पण कीजे ❋ यशपूजा की विधि सुनिलीजै ॥
दुख सुख सदा कि येही जैये ❋ बिन नितनेम कबहु नहिंरहिये ॥
भोगलगाकर भोजन खइये ❋ सन्ध्या भोर आरती गइये ॥
भक्तराज सुन के चित धारा ❋ बहुरि दीन ह्वै बचन उचारा ॥
दया करी बहुतै सुख पाया ❋ कृपाकरी मोहि चरणलगाया ॥
(श्रीस्वामी रामरूपजी कृत गुरुभक्तिप्रकासे)

* प्रसाद सेवन से पहले उच्चारण करने का मन्त्र *

वली विभीषणो भीष्मो कपिलो नारदोऽर्जुनो ।
प्रह्लादो जनको व्यासः अंबरीषस्तथैवच ।
विष्वक्सेनोद्धवोऽक्रूरो ध्रुव हनुमन्तमेव च ।
सनकाद्या शुकश्चैवा एते भागवतोत्तमा ।
राधाकृष्ण प्रसादन्तु सर्वेगृह्णन्तु वैष्णावा ॥ १०६ ॥

* प्रत्यक्ष श्रीयुगलमूर्ति तथा श्रीचित्रसेवा बिधान *

॥ दोहा ॥

निरख परख सतगुरु करे, तिन चरनन मनदेय ।
श्रद्धायुत अरु भावयुत, तिन उपदेशहिं लेय ॥ ७४ ॥
तनमनधन अर्पण करे, पुनि तिन आज्ञा पाय ।
सेवा युगल प्रभूनकी, करे सुग्रह पधराय ॥ ७५ ॥
अष्टयाम की रीतसों, जैसो जाको भाव ।
परचरिया तत्पर रहै, उरमें अतिशय चाव ॥ ७६ ॥

मूलमन्त्र उच्चार कर, सेवा करे सप्रीत ।
वस्तु समर्पै हीयसौं, कही सरल यह रीत ॥ ७७ ॥
तहां लगावे वाटिका, तुलसी कदलि प्रसून ।
सुकर सँवारे नितकरे, करे व्रत नहिं न्यून ॥ ७८ ॥
सावकाश लहि सेव सौं, हरिगुण करहीं गान ।
कै सत्संगत में रले, जासे अति कल्यान ॥ ७९ ॥
सन्मुख गावे नृत्यही, साजबाज बज वाय ।
जक्त लाज भव धार में, याकों यही बहाय ॥ ८० ॥
किरपनता को त्यागकर, उत्सव करे सप्रीत ।
जो लागे तन बेचिये, यहे प्रेम की रीत ॥ ८१ ॥
निन्दास्तुति छोडसब, जुगल चरण रहे लाग ।
यहिविधि आयु बिताय के, मिले प्रभूसों जाग ॥ ८२ ॥
अज्ञन को करतो रहे, युगल भक्ति उपदेस ।
पात्र अपात्र विचार के, देख हिये को लेस ॥ ८३ ॥
इष्ट एक मन एक जहां, रीत भजन रस एक ।
निर अन्तर तिनसों मिले, तहां नहीं भय नेक ॥ ८४ ॥
घुघरारी अलकावली, अतिहि नुकीले नैन ।
बेसर और बुलाक छवि, छिन छिन चिंतत चैन ॥ ८५ ॥
मुसकनि बिजुरी को धसी, तिन चरचा मनलाय ।
सकल आयु यहि रीतिसों, दीजे हर्ष बिताय ॥ ८६ ॥
भावरूप करतव्यता, प्रभु सेवा सुख सार ।
लाड लड़ावे युगल को, दिन दिन विविधि प्रकार ॥ ८७ ॥
अष्टयाम उत्सव मई, छिन छिन चिंते ताहि ।
स्थिति भाव सरूप में, क्षण भूले नहिं वाहि ॥ ८८ ॥

वही रूप में रमिरहै, तीन देह कोत्यागि।
अनुक्षण तत्पर सेवुमें, युगुल माधुरी पागि ॥ ९ ॥
(भक्तिरसमंजुरी ग्रंथे, श्रीमहाराज वचन)

* कर्म उपासना ज्ञान भक्ति *

श्रीगीताजी में प्रथमही प्रश्न अर्जुनका कर्म त्याग करके केवल सांख्य का आश्रम लेनेका (अर्थात ज्ञानरूढ रहकर कर्म त्याग करने का) है उसके उत्तर में प्रारंभ से अन्तिम अध्याय तक श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द का कर्मको पुष्ट करना ही पाया जाता है, सोही श्रीश्यामचरणदासाचार्य्य महाराजने श्रीभक्तिसागर ग्रंथ के धर्मजहाज में वर्णन किया है और यहही सिद्धांत सबही वैष्णव महानुभावों का है कि निष्काम कर्म करे किन्तु सर्वथा कर्म त्याग करना अयोग्य है। जब ऐसे ज्ञान व प्रेम में आरूढ वृत्ति होजाय की शरीर कुछ चेष्टा ही न करना चाहे, ऐसे आनन्द समुद्र में डूब जाय उसके लिये यह नियम नहीं है।

॥ दोहा ॥

करनी विन थोथा रहै, कछू न पावै भेव।
विभव प्राप्त कहुं होयना, कहैं जु यों शुकदेव ॥ १० ॥

॥ चौपाई ॥

करनी विन थोथी सब बातें * जैसे विन चन्दा की रातें ॥
करणी करे तासु से मिलना * बचन अयोगी के नांहि सुनना ॥

॥ दोहा ॥

देव दानव अरु अप्सरा, मानुष यक्षगण प्रेत।
कर्मों ही से होत है, पाप पुण्यको हेत ॥ ११ ॥

॥ चोपाई ॥

नहिं तो हरि है द्रष्टा नाहीं * एक दृष्टि सब ऊपर छाहीं ॥
जो जैसी करणी करलेवे * हरि तैसा ही बदला देवे ॥
(भक्तिसागर ग्रन्थे, धर्मजहाजस्थले)

यज्ञदानं तपकर्म न त्याज्यं कार्यमेवतत् ।
यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ १०७ ॥
(श्रीमद्भगवद्गीता १८ अध्याय)

हे अर्जुन ! जो ज्ञानी हो गये हैं उनको भी यज्ञ, दान, तप आदि कर्म नहीं त्यागने चाहिये करने ही चाहिये । क्यों की यज्ञ दान और तप हृदय को शुद्ध करने वाले हैं ।
निष्काम कर्म करने सेही भक्तिका पोधा उत्पन्न होता है ।

॥ दोहा ॥

चार समय नित नेमकरि, सदा रहै निष्पाप ।
गिना जाय हरिजन विषै, होय नहीं जमताप ॥ १२ ॥

* नवधाभक्ति लक्षण *

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्य मात्मनिवेदनम् ॥ १०८ ॥
(श्रीमद्भागवते)

श्रीभगवान के गुणों को तथा लीलाओं को सुनना, उनका ही कीर्तन, मनसे स्मरण, चरणारविन्दों की सेवा, पूजन, विनय पूर्वक साष्टाङ्ग नमस्कार, दास भाव, सखा भाव, आत्म समर्पण अर्थात् सर्वस्व भगवत् अर्पण करना, ए ९ नवभक्ति के अङ्ग हैं ।

* अष्टपदी *

नवधाभक्ति सम्भार अङ्ग नव जानले ।
श्रवण चिंतवन और कीर्त्तन मानले ॥
सुमिरण बन्दन ध्यान और पूजा करो ।
प्रभुसे प्रीत लगाय सुरति चरणन धरो ॥
होकर दासहीं भाव साध सङ्गत रलो ।
भक्तन की कर सेव यही मत है भलो ॥
आपा अर्पण देय धीर्य दृढता गहो ।
क्षमा शील सन्तोष दया धारे रहो ॥
यह जो मैंने कहा वेद का फूल है ।
योग ज्ञान बैराग सबनका मूल है ॥
प्रेम भक्ति का तात पात तीनों नशें ।
अर्थ धर्म काम मोक्ष सकल तामें बसें ॥
जो राखें मन माहिं विवेक बिचार सों ।
पावे पद निर्वाण बचै जग भार सों ॥
कहैं गुरू शुकदेव मया के भाव सों ।
चरणही दास होय सुनो बहु चावसों ॥

(भक्तिसागर ग्रन्थे)

श्री श्यामचरणदासजी महाराज के कथन से भक्ति की ज्ञान, योग, वैराग्य सब से श्रेष्ठता स्पस्ट है और प्रेमाभक्ति इस नवधा-भक्ति का फल है। बहुतसे लोगों का यह खयाल है कि नवधा-भक्ति तो कनिष्ट है। हमको तो प्रेम भगवान में करना चाहिये यह फल रूप है। वे यह नहीं जानते कि वृक्ष बिना

लगाये फल कैसे प्राप्त हो सकता है। अपने आलस्य से यानी संसार की भोगवासना से भगवत् की नवधा-भक्ति में नहीं लगते हैं। क्योंकि इसमें तो अपना तन, मन और धन तीनों अर्पण करने पड़ते हैं वे कोई सुगम मार्ग ढूंढते हैं जिसमें न कोई उनके शरीर को जरा भी परिश्रम हो, न धनादिक का खर्च हो इधर का भी सुख (विषयों का) भोग और जो ब्रह्मादिक को भी अगम्य शास्त्रों में बतलाया है, उस परात्पर परमात्मा की भी सहज में ही प्राप्ती हो जाय, वे यह नहीं जानते कि यदि यही बात होती तो बड़े २ रघू, गय, अम्बरीषआदिक राजा सब संसार का वैभव छोड़ कर वनमें बड़े २ कष्ट सह कर क्यों रहते, श्रीश्यामचरणदासजी महाराज ने प्रेम का तात (पुत्र) नवधा-भक्ति को बतलाया है। भक्तिसागर में दूसरे जगह पर भी कहते हैं कि—

॥ दोहा ॥

नवों अङ्ग के साधते, उपजे दशवों प्रेम।
सुध बुध जाय नशायही, रहै न दूजो नेम॥ १३ ॥

* नवधा-भक्ति के अङ्ग *

श्रवणभक्ति—जब तक भगवान के गुणों को तथा लीलाओं को न सुनेगा तब तक कैसे प्रीति होसकती है। जैसे किसी मनुष्य के विषय में हमने कुछ भी नहीं सुना है, तो उससे प्रीति उत्पन्न कैसे हो सकती है॥ १ ॥

कीर्त्तनभक्ति—कीर्त्तन भक्ति कई प्रकार की होती है। जैसे नाम जपना, मन्त्र जप करना, नृत्य वाद्य सहित भगवान के गुण-गान करना, कथा कहना॥ २ ॥

॥ दोहा ॥

कई बार जो यज्ञकरि, योग करै चितलाय ।
चरणदास कहे नाम बिन, सभी अफल होजाय ॥ १४ ॥
अष्टधातु में गुण नही, जो पारस के माहिं ।
तप तीरथ व्रत साधना, राम नाम सम नाहिं ॥ १५ ॥
छोड़े सबही बासना, हो बैठे निष्काम ।
चरण कमल में चितधरे, सुमिरे रामही राम ॥ १६ ॥
ऐसा हो जब सन्त हो, तब रीझें करतार ।
दर्शन दे अपना करें, कभी न छोड़ें लार ॥ १७ ॥
चार वेद किये व्यास ने, अर्थ बिचार बिचार ।
तामें निकसी भक्ति ही, राम नाम ततसार ॥ ९८ ॥
ब्रह्महत्या और नारि की, बालक हत्या होय ।
राम नाम जो मनबसै, सब को डारै खोय ॥ ९९ ॥
हिय आवत जग दुखटरे, कंठ आय अघ जाय ।
मुखसूं बोले आय करि, ताकी कोन चलाय ॥ १०० ॥
ऐसा ही हरि नाम है, मोहि रामकी सौंह ।
जाकूं होवे परख ही, सो समझे यहां लौंह ॥ १०१ ॥
बिन समझें पातक नशें, समझ जपे हो मुक्ति ।
चरणदास यों कहत है, जो कोई जाने युक्ति ॥ १०२ ॥
अचरज साधन नाम का, भक्ति योगका जीव ।
जैसे दूध जमाय के, मथकरि काढ़ा घीव ॥ १०३ ॥

(भक्तिसागर भक्तिपदार्थ)

अति सुन्दर काया बनी, कुल उत्तम आचार ।
रामरूप नाहिं नामचित, ताते भला चमार ॥ १०४ ॥

जा घट नोबत नाम की, आठों पहर अखण्ड।
रामरूप ताको नहीं, जन्म मरण जम डण्ड ॥ १०५ ॥

(श्रीरामरूपजी कृत मुक्तिमार्ग ग्रन्थे)

श्री स्वामीजी ने बहुतही नाम का महत्व कहदिया है, विस्तार भय से यहां नहीं लिखा ! मनमें जाप करना, सुरति में त्रृकुटी में इत्यादि अनेक प्रकार नाम लेने के लिखे हैं, सुमरण भक्ति जो तीसरी है सो भी ऊपर के दोहो में बर्णन की है, मन और सुरति से जाप करना यही स्मर्ण है।

"नामो पास्स्वस्मरो पास्स्व"

(श्वेताश्वतरोपनिषद्)

नाम की उपासना कर स्मर्ण की उपासना कर।

अनन्याश्चिंतयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ १०६ ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ९ अध्याय २२ श्लोके)

हे अर्जुन ! जो मनुष्य सर्वदा मेरी कीर्त्तन भक्ति से उपासना करते हैं, उन नित्य युक्त पुरुषन का मैं (योगक्षेम करता हूं) भगवद्प्राप्तिके मार्ग में जो विघ्न आते हैं उनसे क्षेम और जो बातें उस प्राप्तिके लिये उपयोगी हैं, उनका योग मिला देना यह योगक्षेम है ॥ १०९ ॥

हरेर्नामैवनामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्तेव नास्तेव नास्तेव गतिरन्यथा ॥ ११० ॥

(विदुरवाक्य, पाण्डवगीता ५४ श्लोके)

हरि का नामही नामही नामही मेरा जीवन है, कलियुग में और गति नहीं है, नहीं है, नहीं है ॥ ११० ॥

गायन्ति मम नामानि मम कर्माणि चार्जुन ।
नमस्तेषां नमस्तेषां नमस्तेषां पुनः पुनः ॥ १११ ॥
अशेष वासना युक्तो काम क्रोध परायणः ।
स पूतः सर्व पापेभ्यो यस्य नाम परन्तप ॥ ११२ ॥

(आदिपुराणे)

हे अर्जुन ! जो मेरे नाम और कर्मों का गान करते हैं, उनको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूं, नमस्कार करता हूं, नमस्कार करताहूं ॥ सब तरह की वासना से लिप्त और काम, क्रोध, में फँसा हुआ मनुष्य भी जो नाम लेवे तो सर्व पापों से पवित्र हो जाता है ॥ १११-११२ ॥

यं मां स्मृत्वा अगाधागाधा भवति
"यं मां स्मृत्वा अश्रोत्रियः श्रोत्रियोभवति" ॥११३॥

जिस मुझ को स्मरण करके अगाध जल तरने योग्य हो जाता है, जो वेद वेत्ता नहीं है (जो वेद के जानने वाला नहीं है) वो भी वेद वेत्ता हो जाता है ॥ ११३ ॥

(गोपालतापनी उपनिषद् उत्तरार्द्ध मंत्र ४)

स्तेनः सुरापो मित्रघ्नब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
स्त्रीराजपितृगोहंता ये च पातकिनोऽपरे ॥ ११४ ॥
सर्वेषामप्यघवता मिदमेवसुनिष्कृतम् ।
नामव्याहरणंविष्णोर्यतस्तद्विषयामतिः ॥ ११५ ॥

न निष्कृतै रुदितैर्ब्रह्मवादिभिस्तथाविशुद्ध्यत्यघवान-व्रतादिभिः । यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतैस्तदुत्तम श्लोक गुणोपलंभकम् ॥ ११६ ॥

अज्ञानादथवाज्ञानादुत्तमश्लोक नामयत् ।
संकीर्तित मघं पुंसो दहेदेधो यथा नल ॥ ११७ ॥
यथाऽगदं वीर्यतम मुपयुक्तं यदृच्छया ।
अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मंत्रोऽप्युदाहृत ॥ ११८ ॥
(श्रीमद्भागवत षष्ठस्कन्धे)

चोरी करने वाला, मदिरा पान करने वाला, मित्रद्रोही, ब्राह्मण हत्या करने वाला, गुरुपत्नी संभोगी, स्त्री, राजा, पिता और गौ के मारने वाला॥ और जो पापी हैं, सब के पापों के प्रायश्चित्त का सब से बड़ा उपाय श्री भगवान का नाम जप है जिससे उनमें प्रेम हो ॥ ब्रह्मवादी ऋषिमुनियों ने व्रतआदि अनेक उपाय पापों के दूर होने के बतलाये हैं, किन्तु उनसे इतना शुद्ध नहीं होता है, जितना हरि नाम तथा हरिगुण गान से ॥ जान कर या बिना जाने जो भगवान का नाम लिया जावे वो अग्निकी तरह पापों को भस्म करदेता है ॥ जैसे बड़ी तेज दवा जान के लीजाय, या बिना जाने, अपना प्रभाव जरूर दिखाती है । वैसे ही भगवद्मंत्र जानके जपा जाय या बिना जाने, अपना प्रभाव जरूर दिखलाता है ॥ ११४-११५-११६-११७-११८ ॥

श्री श्यामचरणदास महाराज ने जो भक्तिसागर ग्रन्थ में राम नाम अधिक लिया, उसके विषय में श्रीश्यामचरणदास महाराज अपनी शिष्य श्री रामसखीजी प्रति श्रीभक्तिरसमंजरी ग्रन्थ में कहते हैं ॥

॥ दोहा ॥

राम इन्हैं सब कहत है, ताको अर्थ रसाल ।
"रा" अक्षर श्री राधिका, "म" मनमोहनलाल ॥ १०६ ॥
प्रथम हेतु यह जानिये, षट भग युक्त यह नाम ।
सो भगवान स्वरूप शुभ, नवल राधिका-श्याम ॥ १०७ ॥
ऐश्वर्य ही को जानके, जगत भजत प्रभु नाम ।
ताही सों वर्णन कियो, नाम राम अभिराम ॥ १०८ ॥
युग्म नाम प्रत्यक्ष में, कह्यो नहीं यह हेत ।
अधिकारी बिन नाम रस, बनतन कैसेहु देत ॥ १०९ ॥
द्वितीय हेतु यह जानिये, स्वामी पतिको नाम ।
बार बार नहिं भाषवो, प्रगट बनत अभिराम ॥ ११० ॥
दृष्टि बचावन जगत हित, ता में राखे ढांप ।
हों ही देखत यत्न करि, जिमि मणि देखत सांप ॥ १११ ॥

चतुर्थ पादसेवन—श्री जी के मूर्तिस्वरूप के चरणकमलों में केशर, चन्दन, तुलसीपत्र, चढाना अथवा नूपुर आदिक भूषन धारण कराना, अथवा श्री जी के आवेशावतार रास के स्वरूपों की चरणसेवा करना, अथवा श्री सतगुरू और संतों की चरण सेवा करना, यही "पादसेवन" भक्ति कहाती है ॥ ४ ॥

पंचम अर्चन-भक्ति ५—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ ११२ ॥
(श्रीमद्भगवद्गीता ९ अध्याय २६ श्लोके)

जो पुरुष मेरे प्रति पत्र, पुष्प, फल और जल भक्ति से अर्पण करते हैं वो मैं भोजन करता हूं ॥ ११२ ॥

तुलसी दलमात्रेण जलस्य चुलुकेन च ।
विक्रीणितेस्वमात्मानंभक्तेभ्योभक्तवत्सलः ॥ १२० ॥

(महाभारते)

केवल तुलसीदल करके और केवल जल के चुलू करके भक्तन के प्रति भक्तवत्सल प्रभु अपने आपको बेच देते हैं ॥ १२० ॥

श्रद्धयोपहृतं प्रेष्ठं भक्तेन ममवार्यपि ।
भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषायकल्पते ॥ १२१ ॥
प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयम् ।
पूजादिनाब्रह्मलोकंत्रिभिर्मत्साम्यतामियात् ॥ १२२ ॥
मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति ।
भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेतमाम् ॥ १२३ ॥

(श्रीमद्भागवत एकादशमस्कन्धे)

श्रद्धासे मेरा भक्त मुझको जलभी अर्पण करे तो वो अत्यन्त प्रीतिदायक होता है और अभक्त यदि बहुत सामग्री से भी मेरा अर्चन करे तो मैं प्रसन्न नहीं होता हूं ॥ १२१ ॥

अर्चन विग्रह के प्रतिष्ठा मात्र कराने से सार्वभौम सुख प्राप्त होता है, मन्दिर बनवाने से तीन लोकों का अधिकार पूजा आदिक से ब्रह्मलोक और तीनों से मेरे समान वैभव प्राप्त होता है । जो जन मुझको निरपेक्ष भक्ति योग से प्राप्त होता, भक्तियोग से जो मेरी पूजन करता है, उक्त प्रकार उनको प्राप्त होता है ॥ १२२-१२३ ॥

॥ दोहा ॥

पाती फूल जु भाव सों, सह सुगन्ध करि धूप ।
शुकदेव कहैं यों कीजिये, पूजा अधिक अनूप ॥ ११२ ॥
निष्काम कर्म तें भक्ति हो, नवधा ताको नाम ।
नवधा तें प्रेमा प्रगट, ता वस श्यामा-श्याम ॥ ११३ ॥
पराभक्ति फल रूपजो, प्रेमा तें उपजंत ।
सेव करे श्री अङ्ग की, सरस राधिका कन्त ॥ ११४ ॥
कहा राजसी मानसी, पूजा कहिये दोय ।
पूजा कहिये दोय, जैसी जाके मन भावै ।
धारे नेम अचार, अंत ना चित्त डुलावै ॥ ११५ ॥

(भक्तिसागर ग्रन्थे)

शैली दारुमयी लौही लेप्यालेख्या च सैकती ।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्ट विधास्मृता ॥ १२४ ॥

(श्रीमद्भागवते)

पाषाण मई, काष्ट मई, धातु मई, लिपी हुई, लिखी हुई, रजकी, मनो मई, मणिमई; यह आठ प्रकार की मूर्ति होती है ॥ १२४ ॥

मुमुक्षुर्वै प्रतिमायां दारुमय्यां प्रस्तरमय्यां धातुमय्यां पूर्णां देवता मावाहयेदर्चयेन्निवेदयेत्तान्निवेदितमन्नं भुंजीयाद् यस्यैतद्वृत्तं सोऽश्नुते सर्वान् भोगान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन स्वर्गेण लोकेन ॥ १२५ ॥

(साम शाखा २६ भाष्यम्)

मुमुक्षुपुरुष, दारू, पाषाण, वा धातुमयी प्रतिमा बना कर

मंत्र के विधान से देवता को आवाहन करके पूजन करे, निवेदन करे, निवेदन को अन्न भोजन करे, जो कोई ऐसा नेम रक्खे सो यहां पुत्रादिक पशुआदिक का सुख भोग कर ब्रह्म वर्चस की प्राप्ति करके दिव्य लोक गामी होता है ॥ १२५ ॥

योऽर्चयेत् प्रतिमां मां च प्रियतरो भुवि ॥ १२६ ॥

(अथर्ववेद गोपालतापनी उपनिषद् उत्तरार्द्ध मं० ४६)

जो मुझ को प्रतिमा में पूजन करे वो मुझको अत्यन्त ही प्यारा है ।

"अश्ममयं वा धातुमयं रसिकानन्दस्वरूपं
श्रीराधिकया युतं विधाय" ॥ १२७ ॥

(सामवेद रहस्योपनिषद्)

मणिविग्रह वा धातुविग्रह श्रीयुगलकिशोरका निर्माण कराके (श्रीहरिपूजा त्रिविध है)–१ अर्चा, २ मानसी, ३ आत्मपूजा; आत्मपूजा के विषे, श्रीगीतामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं–

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदिवा दुःखं स योगी परमोमतः ॥ १२८ ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ६ अध्याय ३२ श्लोक)

जो अपने समान सब प्राणी मात्रों में भाव करता है, जैसे अपने को दुःख अप्रिय है और सुखप्रिय है, वैसे ही समस्त जीव मात्रों में आत्मा एक समझ के उनको सुखही (दान मानादिसे) देता है, दुःख नहीं देता वो परम योगी है ॥ १२८ ॥

॥ पद ॥

ए मन आत्म पूजा कीजै ॥
जितनी पूजा जगके माहीं सबहुनको फल लीजै ॥ ए मन० ॥

जो जो देही ठाकुर द्वारे तिनमें आप विराजै ॥
देवलमें देवत है परगट आछी विधिसो राजै ॥ ए मन० ॥
त्रैगुण भवन संभार पूजिये अनरस होन न पावै ॥
जैसे को तैसा ही परसो प्रेम अधिक उपजावै ॥ ए मन० ॥
घट घट सूझे कोइ एक बूझै गुरू शुकदेव बतावै ॥
चरणदास यह सेवन कीन्हे जीवन मुक्त फल पावै ॥ ए मन० ॥

॥ दोहा ॥

जो कोई आवै राजसी, देव बड़ाई ताहि ।
जो कोई आवै तामसी, करो नमनता वाहि ॥ ११६ ॥
जो कोई आवै सात्विकी, मिलोताहि तज मान ।
गुर्झी खोल चरचा करो, तत मत लीजें छान ॥ ११७ ॥

* पद, राग बसन्त ॥

साधोआतम पूजाकरैकोय । जोई करे सोई मुक्ता होय ॥
नेह नगर में बसे जाय । भवन संवारे हित लगाय ॥
तामे सेवा धारे धार । आठ पहर करे बार बार ॥
तन मन बचन संभार लेव । सन्मुख देखो अपना देव ॥
दया पुष्प माला बनाव । क्षमा शील चन्दन चढ़ाव ॥
लिये दीनता हाथ जौरि । साचे रंगमें मनकूं बोरि ॥
घट घट प्रीतम राख मान । रस भङ्ग न होवे सावधान ॥
प्रसन्नता सोइ धूप दीप । शुकदेव कहैं यों रहु समीप ॥
चरणदास हो सङ्ग न छोर । कृष्णमई लख चहूं ओर ॥

(भक्तिसागर)

* अथ मूर्त्ति पूजन के विषय वेदका प्रमाण *

एकां हि रुद्रायजन्ति द्वितीयां हि ब्रह्मायजन्ति, इत्यादि

(अथर्ववेद गोपालतापनी उपनिषद्)

एक मूर्तिको रुद्र यजन करते हैं, दूसरी को ब्रह्मा, इत्यादि ॥ १२९ ॥

नित्योनित्यानां चेतनश्चेतनानामेकोबहूनांयोविदधाति कामान् । तंपीठगंयेऽनु भजन्ति धीरास्तेषांसिद्धिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ १३० ॥

(अथर्ववेद गोपालतापनी उपनिषद्)

जो नित्य का भी नित्य चेतन का भी चेतन है, जो एकही बहुतों की कामना पूर्ण करता है, उसके विग्रह को सिंहासन पर स्थित करके जो अर्चन आदि से भजते हैं, उनहीं को शाश्वती अर्थात् सर्व काल में रहने वाली सिद्धि प्राप्त होती है, औरों को नहीं ॥ १३० ॥

तमुस्तोतारः पूर्व्य यथाविदऋतस्य गर्भं जनुषा पियर्तन । आस्यजानन्तो नाम चिद्विवक्तनमहस्ते विष्णो समति भजामहे ॥ १३१ ॥

(ऋग्वेद मं १ सू १५६ मं ३)

हे स्तोता गण तुम जैसा जानते हो अनादि सत्य कारण श्रीकृष्ण को प्रसन्न करो, उनको चित नाम जन्म से जानते कीर्तन करो (अर्थात् मनुष्य लोक में उनका जन्म और लीला से जो नाम प्रसिद्ध हुए हैं वे नाम चित हैं, श्रीभगवान का नाम रुप समान है, उनमें जड अंस नहीं है, शुद्ध चिन्मय है) हे विष्णो ! हम सुमति के अर्थ भजन करें ॥ १३१ ॥

तमस्य राजा वरूणस्तमाश्विना क्रतुं सचंत मारुतस्य वेधसः दाधार दक्षमुत्तम महर्विदम् व्रजं च विष्णुः सखिवां अपोर्णुते ॥ १३२ ॥

(ऋग्वेद मं १ सू १५६ मं ४)

उस विष्णु का इन्द्र, वरुण, अश्विनीकुमार, मरुतगण, ब्रह्मा सब पूजन करते हैं, वही सब को उत्तम बल धारण करता है और वह सखाओं समेत ब्रज को प्रगट करता है ॥ १३२ ॥

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥ १३३ ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ११ अध्याय ५५ श्लोके)

जो मेरी सेवा परायण होता है, सङ्ग त्याग मेरी भक्ति करता है, और सब जीवों से निर्वैर है, हे पाण्डव ! वो मुझको प्राप्त होता है १३३

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्म परमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धि मवाप्स्यसि ॥ १३४ ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १२ अध्याय १० श्लोके)

मेरे विषे मन और बुद्धि तैलवत धार लगने का अभ्यास करने में भी यदि असमर्थ है, तो मेरी सेवा परायण हो मेरी सेवा से भी सिद्धि को प्राप्त होगा ॥ १३४ ॥

यज्ञाशिष्टामृतभुजो यान्तिब्रह्मसनातनम् ॥ १३५ ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ४ अध्याय ३१ श्लोके)

भगवद् यज्ञ पूजा आदिक में भगवद् अर्पण किया हुआ अन्न जो अमृत रूप होगया है, उसको जो ग्रहण करते हैं वे सनातन ब्रह्म को प्राप्त होते हैं ॥ १३५ ॥

कृष्णं कमलपत्राक्षं नार्चयिष्यन्ति ये नराः ।
जीवन्मृताश्च ते ज्ञेया न संभाष्याः कदाचन ॥ १३६ ॥
(महाभारते सभापर्वे)

कमलनेत्र श्रीकृष्णको जो नर अर्चन नहीं करते हैं, उनको जीतेही मरे हुए समझना चाहिये उनसे कभी संभाषण न करे ॥ १३६ ॥

हरिपूजा विधानं च यस्य वेश्मनि नो द्विजः ।
श्मशानसदृशं विद्यान्नकदाचिद्विशेच्चतत् ॥ १३७ ॥
(वामन पुराणे)

जिस के घरमें हरिपूजा का विधान नहीं है उस घर को श्मशान के बराबर समझे और वहां कभी भी प्रवेश न करे ॥ १३७ ॥

षष्ठी वन्दनभक्ति—चरणारविन्दों में साष्टाङ्ग दण्डवत करना तथा विनय करना, यही वन्दन भक्ति है ॥ ६ ॥

* अथ अष्टाङ्ग प्रणाम लक्षण *

उरसा शिरसा कट्या मनसा श्रद्धया तथा ।
पद्भ्यांकराभ्यांवाचा च प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते १३८
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारितस्य वर्द्धन्ते ह्यायुः कीर्तिर्यशोबलम् ॥ १३९ ॥
(इति मनु)

पेट, मस्तक, कटि, मन, श्रद्धा, हाथ, पाँव, और वाणी, इन सब से एक साथ प्रणाम करने को साष्टाङ्ग प्रणाम कहते हैं। नित्यप्रति माता, पिता, गुरु आदि वृद्ध जनों को प्रणामादि करने वाले पुरुष के आयुष्य, यश, कीर्ति और बल यह चारों वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ १३८-१३९ ॥

सप्तम दासभावभक्ति—अपने शरीर से भगवान की तथा श्रीसद्गुरु की और भगवान के भक्तों की सेवा करे, मन से रात दिन भगवान का ध्यान, तथा श्रीसद् गुरु के चरण कमलों के ध्यान, भावना में लवलीन अष्टप्रहर रहे, और धन को भगवान के समय २ के उत्सव आदिक में प्रेम से खर्च करे तथा श्री गुरु और संत सेवा में खर्च करे ॥ ७ ॥

अष्टम भक्ति सखाभाव—जब भक्त दासभाव में दृढ हो जाता है तो भगवान के प्रेम शनै शनै इतना बढजाता है कि जैसे सखा में प्रेम हो जाता है, ऐसा परम आसक्तियुक्त भाव बढजाता है, ऐश्वर्य का भाव ध्यानसे विस्मर्ण होने लगता है ॥ ८ ॥

नवम भक्ति आत्मनिवेदन—जब तन, मन, धन, चित, बुद्धि और इन्द्री गण इन सब को प्रेमी पुरुष भगवान की भक्ति में प्रीतिपूर्वक लगा देता है, इसही को आत्मनिवेदन नवम भक्ति कहते हैं ॥ ९ ॥

यह नवधा-भक्ति के अङ्ग एक दूसरे में ओतप्रोत भी हैं, जैसे दासभाव में आत्मनिवेदन भी आजाता है। "प्रेमाभक्ति" इस नव प्रकार की भक्ति साधन करते २ इस का फलरूप प्रेम भगवद्कृपा से प्राप्त होता है। श्री श्यामचरणदासजी महाराज ने कहा है—

॥ दोहा ॥

नवों अंगके साधते, उपजे प्रेम अनूप।
रणजीता यों जानिये, सब धर्मन का भूप ॥ ११८ ॥

प्रेम बराबर योगना, प्रेम बराबर ज्ञान ।
प्रेम भक्ति बिन साधवा, सबही थोथा ध्यान ॥ ११९ ॥
प्रेम छुटावै जगत सों, प्रेम मिलावै राम ।
प्रेम करै गति औरही, ले पहुंचे हरिधाम ॥ १२० ॥

॥ चौपाई ॥

सबमत अधिकी प्रेम बतावैं ❋ योग युगत सूं बड़ा दिखावैं ॥
दुर्लभ प्रेम जु हाथन आवै ❋ हरिकिरपा कर दे तो पावै ॥
किसी भक्त हिय प्रेम जु जागे ❋ तो हरि दरशत रहै जु आगे ॥
सकलसिरोमणि प्रेमहि जानो ❋ चरणदास निहचे मन आनो ॥
अष्टपदी—वह करै कागसों हंसा । एक रहै पियाका संसा ॥
प्रेमलता जब लहरै । मन बिना योगही ठहरै ॥

(श्रीभक्तिसागर ग्रन्थे प्रेममहिमा)

वाकगद्गदाद्रवतेयस्यचित्तं हसत्यभीक्ष्णं रुदतिक्वचिच्च । विलज्जउद्गायतिनृत्यते च मद्भक्तियुक्तोभुवनंपुनाति ॥ १४० ॥

(श्रीमद्भागवत एकादशमस्कन्धे)

जिस भक्त की प्रेम सें वाणी गद गद होजाती है, चित्त द्रवीभूत होजाता है, कभी हँसता है कभी रुदन करता है, कभी लज्जा रहित होकर उच्चस्वर से गायन करता है, कभी नृत्य करता हैं, ऐसा भक्त त्रिलोकी को पवित्र करता है ॥ १४० ॥

श्रीश्यामचरणदासाचार्य्य महाराजने एकपद में कहा है—

॥ दोहा ॥

ज्ञानयोग वैराग सबन, सों प्रेम प्रीति है न्यारी ।
चरणदास ने गुरुकिरपा, सों सांची बात विचारी ॥ १२१ ॥

(भक्तिसागर प्रेमाभक्ति)

कंठावरोधरोमाश्चाश्रुभिः परस्परं लयमानाः पावयंतिकुलानिपृथवीश्च ॥ १४१ ॥

(नारदभक्ति-सूत्रे)

जिनके प्रेमसे गद गद होने के कारण कण्ठ रुक जाते हैं, शरीर में रोमांच होजाते हैं, नेत्रों से आश्रू पड़ते हैं, परस्पर भगवद्गुण गायन करते हैं, वे सब कुलों को तथा समग्र पृथ्वी को पवित्र करते हैं ॥ प्रेमकी पूर्ण कोटि में भक्त का भगवान के साथ नित्य अखण्ड विलास व आनन्द होता है, उसी दशा का नाम परा भक्ति है ॥ १४१ ॥

भक्ति रेवैनं नयति भक्ति रेवैनं पश्यति भक्ति रेवैनं दर्शयति ॥ १४२ ॥ (श्रुति)

भक्ति ही परमात्मा के तर्फ ले जाती है, भक्ति ही उस परमात्मा को देखती है, भक्ति ही उस का दर्शन कराती है ॥ १४२ ॥

"सापरानुरक्तिरीश्वरे"

(शांडिल्य सूत्रे)

भक्तिपरमात्मा में परम अनुरक्ति होना ही है ।

॥ पद ॥

करत नवधा नेम निशदिन नेह डोर लगाय ।
फेर प्रमा होय प्ररगट आपा आप नशाय ॥
फिरे मतवारो जगत में, कर्म कार वहाय ।
तन छूटे धर दिव्य देही अमर लोक बसाय ॥

(श्रीमुक्ति मार्ग स्वामी रामरूप वाक्य)

छन्द—विक्षेपक बहु न होय हरि सों निकटवर्ती नित्य ही।
सदा सन्मुख रहै आगे हाथ जोडे भृत्य ही॥
पल एक कबहुन होय अन्तर टकटकी लागी रहै।
यह पराभक्ति प्रकाश परिचय शिष्यसुन सद्गुरु कहै॥

॥ त्रोटक छन्द ॥

सेव्यको जायके दास ऐसे मिलै, एकसो होय पै एक ह्वै नामिलै॥
आपनो भाव दासत्व छांडै नहीं, सा पराभक्ति है भाग्यपावै कहीं॥
ज्यों मृगतृष्णा धूप मंझारी, एकमेक और दीसत न्यारी॥
त्योंही स्वामी सेवक ऐका, सुख बिलसे यह भिन्न विवेका॥
हरि में हरिदास बिलास करें, हरिसों कबहू न विछोह परे॥
हरि अक्षय त्यों हरिदास सदा, रस पीवन को यह भेद जुदा॥

(श्रीसुन्दरदासजी वाक्य)

* भक्ति तथा ज्ञानकी विवेचना *

तीन प्रकार की भक्ति में नवधा साधन रूपा है, प्रेमा और परा फल रूपा है, ऐसे ही ज्ञान एक साधन रूप है, और एक फल रूप है, जिसको अनुभवगम्य विज्ञान कहते हैं, ज्ञान भी कर्म की तरह भक्तिका साधन है, क्यों कि जबतक यह ज्ञान नहीं होगा कि बाहर भीतर एक ही राम रमरहा है, उसी से इस जगत की सृष्टि है, उसी में इस का लय है, सृष्टि के आदि में भी केवल एक परमात्मा ही था, शेष में भी परमात्मा ही रहेगा। काल, कर्म, प्रकृति आदि भी भगवान में लीन हो जायगी, वर्त्तमान वा मध्यमें ही केवल जो संसार दिख रहा है,

वो असत्य है, क्योंकि जिस वस्तु का आदि और अंत है वो कभी सत्य नहीं है; यही वेदान्त और सांख्यका निश्चय है । इस ज्ञान में स्थिति होगा तब देह का अभिमान, राग, द्वेष आदि सब द्वन्द्व निवृत्त होजायगें, जब देखे गा कि केवल एक परमात्मा ही इस सब स्थावर जंगम जगत रूप है, दूसरा पदार्थ ही नहीं तो किस से द्वेष करेगा और किससे राग करेगा । देह को आत्मवत् मानने से जो अहंकार उत्पन्न होगया है कि मैं यों मैं यों हूं, यह सब निवृत्त होकर तैलवत धार अखंड प्रेम परमात्मा में होजायगा।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ॥
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ १४३ ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १८ अध्याय ५४ श्लोके)

जब प्राणी ज्ञान करके ब्रह्मरूप होजाता है, प्रसन्नचित्त न किसी बातका शोच है न आकांक्षा है, सब प्राणीमात्रों में सम दृष्टि है वो मेरी पराभक्ति को प्राप्त होता है ॥ १४३ ॥

भक्त्या जानातीतिचेन्नाभिज्ञप्त्या साहाय्यात् १४४

(शाण्डिल्य सूत्रे)

बिना भक्तिके ज्ञानसेही परमात्मा नहीं जाने जासकते है, क्योंकि ज्ञान तो भक्तिका साधन है ॥ १४४ ॥

सातुकर्म ज्ञानयोगेभ्योप्याधिकतरा ॥ १४५ ॥

(नारदसूत्रे)

भक्ति; कर्म, योग, ज्ञान से भी अधिकतर है ॥ १४५ ॥

तपस्विभ्योऽधिकोयोगी ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाऽधिकोयोगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ १४६
योगीनामपिसर्वेषां मद्‌गतेनांतरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां समेयुक्त तमोमतः ॥ १४७ ॥
(श्रीमद्भगवद्गीता ६ अध्याय ४६-४७ श्लोके)

तपस्वी, ज्ञानी और कर्मी इन सबसे योगी श्रेष्ठ होता है, तिस्से हे अर्जुन! तू योगी हो । योगियों में भी जो श्रद्धा सहित अपने मनको मुझमें लगाकर मेरी भक्ति करता है वो श्रेष्ठ है १४६-१४७

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथाभक्तिर्ममोर्जिता १४८
(श्रीमद्भागवत एकादशमस्कन्धे)

हे उद्धव! जैसे मेरी उत्कृष्ट भक्ति मुझको प्राप्त करती है वैसे योग, सांख्य, वेद, पाठ, तप, दान, इत्यादि नहीं करते ॥ १४८ ॥

नायं सुखापोभगवान् देहिनां गोपिकासुतः ॥
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥ १४९
(श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धे)

भगवान ! यशोदानंदन आत्म भूत ज्ञानियों को सुलभता से प्राप्त नहीं हो सकते, जैसे कि भक्ति करनेवालों को ॥ १४९

युंजानानाम भक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः ॥
अक्षीणवासनं राजन् दृश्यते पुनरुत्थितम् ॥ १५० ॥

अभक्त जो प्राणायाम आदि योग व ज्ञान के मार्गसे मन को रोकते हैं, उनका मन वासना के क्षीण न होने के कारण फिर

चंचल हो जाता है, भक्ति से तो बिना ज्ञान साधन के भी भगवद् प्राप्ती हो सकती है ॥ १५० ॥

केवले नहि भावेन गोप्यो गावो खगा मृगाः ।
येऽन्येमूढधियोनागाः सिद्धामामीयुरंजसा ॥ १५१ ॥
(श्रीमद्भागवत एकादशमस्कन्धे)

केवल भक्तिसेही गोपी, गौ, पक्षी, चोपाये और बहुत मूढबुद्धी जीव तथा नाग सिद्धताको प्राप्त होकर मुझतक बिना क्लेशके पहुंचे १५१

"अत एव तद्भावाद्वल्लवीनाम्" ॥ १५२ ॥
(शांडिल्य सूत्रे)

ज्ञानके अभाव होने पर भी ब्रज गोपियों को केवल भक्तिसे ही श्रीकृष्ण प्राप्त भये, इसके सिवाय ज्ञानसे तो मुक्ति होती है और भक्ति की मुक्ति दासी है, भक्तलोग भगवद्सेवा सेही तृप्त रहते है, मुक्ति की इच्छा भी नहीं करते, उनको मुक्ति तुच्छ मालुम पड़ती है ।

केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः ।
अघंधुन्वंतिकार्त्स्नेन नीहारमिवभास्करः ॥ १५३ ॥
(श्रीमद्भागवत षष्ठमस्कन्धे)

कोई कोई केवल भक्तिसेही बासुदेव व परायण होकर पूर्ण रूप से पाप दूर करते हैं, जैसे सूर्य्य कोहरे को दूर कर देता है ॥ १५३

नात्यंतिकंविगणयंत्यपि ते प्रसादं
किंत्वन्यदर्पित भयं भ्रुवउन्नयैस्ते ।
येऽगत्वदंघ्रिशरणाभवतः कथायाः
कीर्त्तन्यतीर्थयशसः कुशलारसज्ञा ॥ १५४
(श्रीमद्भागवत - तृतीयोस्कन्धे)

जो आपके चरणारविंदों के एकान्तिक भक्त है, आपकी कथा के रस लेने में कुशल हैं; वे मोक्षको भी आपकी कृपा नहीं मानते हैं, फिर और स्वर्गादिक जो आपके भ्रूभङ्गसे नष्ट होने वाले है, उनकी तो क्या बात है ॥ १५४ ॥

ज्ञानेप्रयासमुदपास्यनमन्तएव जीवन्तिसन्मुखरितां भवदीयवार्त्तां । स्थानेस्थिता श्रुतिगतांतनुवाङ्मनोभिर्येप्रायशोऽजितजितोऽप्यसितैस्त्रिलोक्याम् १५५
श्रेयः श्रुतिं भक्ति मुदस्यतेविभोक्लिश्यन्ति ये केवल बोधलब्धये । तेषामसौक्लेशलएवशिष्यते नान्यद्यथास्थूलतुषावघातिनाम् ॥ १५६ ॥

ज्ञान में परिश्रम को दूर करके जो आपकी कथादिक में रति करते हुए नमस्कारादि नवधा भक्ति करते हैं, शरीर वाणी और मन सब आपमें अर्पन कर दीनो है, ऐसे जो आपके भक्त हैं, उन करके, आप अजित होकेभी जीते गये ॥ १५५ ॥

कल्याण की वर्षा करने वाली भक्ति को जो त्याग करके केवल ज्ञान के ही लिये क्लेश पाते हैं, उनको क्लेश के सिवाय कुछ नहीं प्राप्त होता है, जैसे तुषों को कूटने वालों को क्लेश के सिवाय कुछ (अन्नादि) नहीं प्राप्त होता है ॥ १५६ ॥

येऽन्येरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ॥ आरुह्य कृच्छ्रेणपरंपदंततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥ १५७ ॥

(श्रीमद्भागवते १)

जो मनुष्य अपने आपको विमुक्त होने का अभिमान रखते हैं, किन्तु आपमें भाव न होने से अशुद्ध बुद्धि हैं, वे कष्ट करके परमपद को चढ करके भी नीचे गिरते हैं, क्यों कि आप के चरणाविंदों से विमुख रहे ॥ १५७ ॥

तथा न ते माधवतावकाः क्वचिद्भ्रष्यन्तिमार्गात्वयि-बद्धसौहृदास्त्वयाभिगुप्ता विचरन्तिनिर्भया विनायकानीकपमूर्द्धसुप्रभो ॥ १५८ ॥

हे माधव ! आप के प्रेमी शरणागत भक्त लोग मार्ग से कभी भ्रष्ट नहीं होते, वे आपकी रक्षा में रहकर बेखटके विघ्नों के सिरपर पांउ धरकर विचरते हैं ॥ १५८ ॥

यस्यामेवकवय आत्मानमविरतं विविधवृजिनसंसार परितापोपतप्यमानमनुसवनं स्नपयन्तस्तयैवपरया निवृत्याह्यपवर्गं मात्यन्तिकं परमपुरुषार्थमपिस्वयमासादितं नो एवाद्रियन्ते भगवदीयत्वेनैवपरिसमाप्तसर्वार्थाः ॥ १५९ ॥

(श्रीमद्भागवत तृतीयोस्कन्धे, कपिलदेवजी वाक्य)

जिस भगवान की कथा रूपी अमृत सिंधुमें सर्वज्ञमहानुभाव नानाप्रकार के संसार के तापों से तपेहुए वारंवार स्नान करते हैं और उससे जो आनन्द प्राप्त होता है, उससे मोक्ष तक को (जो अपने आप प्राप्त होजाती है) आदर नहीं करते क्यों कि भगवदीय रहना इसही में सर्वार्थों की समाप्ति समझते हैं १५९

मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादि चतुष्टयं ।
नेच्छन्तिसेवयापूर्णाः कुतोन्यत्कालविद्रुतम् १६०

मेरी सेवासे प्राप्त सालोक्य आदि चार मुक्तियों को भी मेरे एकान्तिकभक्त नहीं चाहते हैं, फिर और स्वर्गादिक जो कालसे नष्ट होने वाले हैं, उनका तो क्या, क्यों कि मेरी सेवा-से ही वो पूर्ण हैं, उनको मोक्षतक की कामना नहीं है ॥ १६० ॥

पश्यन्ति ते मे रुचिराणिसंतः प्रसन्नवक्त्रारुणलोच-नानि । रूपाणिदिव्यानि वरप्रदानिसाकंवाचंस्पृह-णीयांवदन्ति ॥ १६१ ॥

वे एकान्तिक भक्त मेरे अत्यन्त सुन्दर दिव्य और वरके देने वाले (राम-कृष्ण) रूपों को दर्शन करते है, जिनके मुखार-विन्द व अरुण नेत्र अत्यन्त आनन्द दायक हैं, उन रूपों के साथ वाक्विलास भी करते हैं कि जिसकी बडे बडे ब्रह्मादिक इच्छा करते हैं ॥ १६१ ॥

ननाकपृष्टं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यं। नयोगसिद्धिर्नपुनर्भवंवासमंजसत्वाविरहय्यकांक्षे १६२

हे भगवन् आपसे अलग रहकर स्वर्ग परमेष्ठी पद (ब्रह्मपद) चक्रवर्ती राज्य, रसातल का राज्य, योग की सिद्धि, व मोक्ष को भी नहीं चाहते हैं ॥ १६२ ॥

* सविशेष निर्विशेष निर्णय *

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमामताः ॥ १६३ ॥
ये त्वक्षरमनिर्देश्य मव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ १६४॥

सन्नियम्येन्द्रिय ग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ १६५ ॥
क्लेशोऽधिकतरस्तेषा मव्यक्ता सक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ १६६ ॥
ये तु सर्वाणि कर्माणि मयिसंन्यस्यमत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ १६७ ॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु संसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ १६८

(श्रीमद्भगवद्गीता १२ अध्याय २ से ७ श्लोकतक)

अर्जुन के प्रश्न करने पर की सविशेष के उपासक श्रेष्ठ हैं, या निर्विशेष के, इसके उत्तर में श्रीभगवान॥ कहते हैं कि मेरे में (साकारब्रह्म में) जो मन को लगा कर नित्ययुक्त होकर मेरी भक्ति करते हैं और मेरे विषय परम श्रद्धायुक्त हैं, वे दोनों प्रकारके उपास को में श्रेष्ठ हैं ॥ १६३ ॥

जो सर्व इन्द्रयों का संयम करके सर्वत्र समबुद्धि हो के और प्राणीमात्रों के हित में रत हो के बाणी से कहने को अशक्य और रूपादि हीन सर्वत्र व्याप्त, अचिन्त्य, कूटस्थ, अचल और नित्य ऐसे अक्षराख्य ब्रह्मकी उपासना करते हैं वे भी हमको ही प्राप्त होते हैं ॥ १६४ ॥

किन्तु अव्यक्त में जिनका चित्त आसक्त है, उनको अधिकतर क्लेश होता है, अर्थात् निराकार उपासना अत्यन्त दुःख साध्य है, क्यों कि जिन्हों ने देह धारण कर रक्खी है उनको देह रहितकी गति प्राप्त होना अतिही कठिन है (इस श्लोकमें श्रीभगवान ने

निर्पक्ष होकर यह बात दर्शादि है, कि नित्य दिव्य विग्रह (स्वरूप) भगवानकी उपासना सुख साध्य भी है और श्रेष्ठ भी है ॥ १४५॥ जो भक्त सर्व कर्म मेरे अर्पण करके मेरेही परायण होते हैं और अनन्यभक्ति योगसे मेरा ध्यानकरतेहुए उपासना करते हैं ॥ १४६ तिनको मृत्युयुक्त संसार समुद्र से शीघ्र ही उद्धार करता हूं, क्यों कि उन्हों ने केवल मेरे में ही चित्त को लगाया है ॥ १४७ ॥

इस श्लोक में यह स्पष्ट रूपसे ज्ञात होता है कि भगवान् को अपने दिव्य विग्रह स्वरूप के अनन्य भक्तों के उद्धार का बहुत ही खयाल रहता है । ऐसा निराकार उपासना वालों का नही, क्यों कि उनके लिय ऐसा वचन नहीं कहा ॥ १४८ ॥

॥ दोहा ॥

निराकारतो ब्रह्महै, माया है आकार ।
दोनों पदही को लिये, ऐसा पुरुष निहार ॥ १२२ ॥
अमरलोक विच पुरुष है, ब्रह्मजु सबके माहिं ।
माया दरशत है सबै, ब्रह्म दीखते नाहिं ॥ १२३ ॥

श्री श्यामचरणदास महाराज के उपरोक्त वचन से यह बात स्पष्ट है कि अमरलोक निजधाम में दिव्य विग्रह विराजते हैं, और सब जगह विश्वमें ब्रह्मरूप से व्यापक हैं, जैसे सूर्य और उसकी धूप, सूर्य एक स्थान में स्थित है, उसकी धूप सब जगह व्यापक है, ऐसे ही दिव्य विग्रह स्वरूप निजधाम में स्थित है, उनका प्रकाश सब जगह व्यापक है, उसी को ब्रह्म कहते हैं ॥

ठीक ऐसा ही श्री वल्लभाचार्य्य महाराज ने अपने ग्रन्थ षोडसी में कहा है । उन्हों ने श्रीगंगाजी का दृष्टांत दिया है ।

गंगाजी के तीन स्वरूप हैं, एक तो जलरूप, दूसरा परम पवित्र करने की सक्ति रूप जो जल में ही सर्वस्थल में व्यापक है, तीसरा दिव्य विग्रह जो उनके एकान्तिक भक्तों को दर्शन देकर कृतार्थ करें हैं। ऐसे ही श्री भगवान् के तीन स्वरूप हैं, एक व्यापक रूप, दूसरा ज्योतीरूप, (नूर) तीसरा दिव्यदेही, देह विभाग शून्य सकल सद् गुण कल्याण गुणधाम नित्य विग्रह साकार रूप हैं।

ब्रह्मणोहि प्रतिष्ठाह ममृतस्या व्ययस्य च।
शाश्वतस्यच धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥ १६१

(श्रीमद्भगवद्गीता ४ अध्याय १२७ श्लोके)

ब्रह्म की प्रतिष्ठा मैं हूं, अव्यय जो अमृत (मोक्ष) ताकी प्रतिष्ठा मैं हूं, सनातन धर्म तथा एकान्तिक भक्तों की प्रतिष्ठा मैं हूं, (अर्थात्) ब्रह्म, मोक्ष, सनातन धर्म और एकान्तियों का सुख इन सबका आश्रम (मैं हूं) स्थान श्रीभगवान् हैं, यह सब उन में प्रतिष्ठित हैं, जैसे धूप सूर्यके आश्रय है, ऐसे ही व्यापक ब्रह्म परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र दिव्य विग्रह के आश्रय है, किन्तु जैसे सूर्य और धूप में रंचक भी भेद नहीं है और धूप सूर्य से भिन्न नहीं होसकती है, ऐसे ही साकार और निराकार ब्रह्म एक हैं, रंचक भी भिन्नता नहीं है। इसलिये श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन से कहते हैं कि निराकार के उपासक भी मुझ को ही प्राप्त होते हैं, दोनों स्वरूपों की अभिन्नता करके॥ १६१॥

*** दोहा ***

निरगुन सरगुन एक प्रभु, देखा समझ विचार।
सतगुरु ने आखें दई, निहचै किया निहार॥ १२४॥

सहजो हरि बहु रंग है, वही प्रगट वहि रूप ।
जल पाले में भेद ना, ज्यों सूरज अरु धूप ॥ १२५ ॥

(सहज प्रकास ग्रन्थे)

जितने वैष्णव आचार्य हैं उन सबका यही मत है कि सूर्य स्थान में दिव्य विग्रह श्री भगवान और धूप स्थानमें निराकार व्यापक ब्रह्म है ॥

* चौपाई *

अब सुन अमरलोककी बानी * त्रैगुण रहित परमसुख दानी ॥
तेज पुंज के ऊपर राजै * अहम् विराट सु बाहर गाजै ॥
ताको ज्योति कहत नर लोई * तेज पुंज कहियत है सोई ॥
सूरज मण्डल ताहि बतावे * जोगी जोग जुक्ति सो पावे ॥
ताके ऊपर अविचल लोका * पाप पुन्य दुखसुखनहिंसोका ॥
सूरज मण्डल जैहैं चीरा * वा लोके कोई पैहैं वीरा ॥

(भक्तिसागर ग्रन्थे अमरलोके)

इन चौपाइयों से श्री श्यामचरणदास महाराज ने यह दिखलाया है कि अहं विराट अर्थात् ब्रह्माण्ड के बाहर प्रकृति मण्डल से परे ब्रह्म ज्योति है, जाको तेज, नूर, सूरज मण्डल आदि नामों से कहते हैं, जिस को वेद सूरज मण्डल कह कर उस की गायत्री द्वारा उपासना बतलाता है और जिस में योगी लोग दशमद्वार से प्राणत्याग कर मिल जाते हैं। उस ज्योति रूप ब्रह्म के ऊपर अरमलोक धाम है, जहां दास भावना में सूर ऐसे कोई एक वीरपुरुष ही पहुंच सकते हैं, हर एक की वहां गम नहीं है। इस ही कारण उसका बेगम पुरी श्री चरणदास

महाराज ने वर्णन की है । श्री श्यामचरणदास महाराज योगी राज हैं, चौदह वर्ष तक समाधि लगाकर ब्रह्मसुख को अनुभव पूरी तौर से करने के बाद यह वचन कह रहे हैं । श्री सूरदास आदि महात्माओं के लिये बहुत से शङ्का कर उठते हैं, कि वह योगीराज नहीं थे, उनका फैसला ठीक और निर्पक्ष नहीं माना जासकता है, किन्तु श्री महाराज के विषय में तो जरा भी शङ्का का कोई को मौका नहीं है, क्योंकि आप ज्ञान, योग, भक्ति, स्वरोदय आदि सब के आचार्य हैं, आप के तथा आपके शिष्यों के ग्रन्थ बिलकुल निरपक्ष हैं, जरा भी खैंच नहीं की है, जो चाहे ग्रन्थों को देख कर इस बात की सत्यता की जांच कर सकता है ।

॥ दोहा ॥

सूरदास सरगुन कथै, निरगुन कथै कबीर ।
चरणदास दोनों कथै, पूरण पुरुष गँभीर ॥ १२६ ॥

जैसे श्री कृष्णचन्द्र ने एकान्तियों के और मोक्षगामी पुरुषों के सुख को भिन्न भिन्न बतलाया है और कहा है कि दोनों सुखों की मैं ही प्रतिष्ठा हूं । ठीक इस ही तरह श्रीश्याम-चरणदास महाराज ने कहा है कि जो एकान्तिक भक्त हैं, उन को ही अमरलोक धाम की प्राप्ति हो सकती है । योगीराज जो दासभाव में सूर नहीं हैं वे वहां नहीं पहुंच सकते, बहुतों का खयाल है कि साकार स्वरूप मायाकृत है, क्योंकि आकार और नाम दोनों माया के स्वरूप हैं । वे लोग यह नहीं जानते कि भगवद् का स्वरूप कहीं भी वेद, पुराण आदि में मायाकृत

आकारों की तरह नहीं माना है, देह और उसमें शयन करने वाला आत्मा देही यह दो विभाग हर एक मायाकृत शरीरमें है, किन्तु भगवद् के स्वरूप में यह विभाग नहीं है। श्रीश्यामचरणदास महाराजने उसी अमरलोक के वर्णनमें श्रीभगवान् तथा उनके दासो के स्वरूप परमतत्व और त्रैगुण रहित वर्णन किये हैं ॥

॥ चौपाई ॥

नित्य किशोरी गोरी सारी ❀ पांच तत्व तिरगुण से न्यारी ॥
तत्व स्वरूपी काया पावे ❀ भवसागर में बहुरि न आवे ॥
सोलह बरष उमर नित रहै ❀ अजर अमर नित आनंद लहै ॥

(भक्तिसागर अमरलोक)

अङ्गानि यस्य सकलेन्द्रिय वृत्तिमन्ति
पश्यन्ति यान्ति कलयन्ति चिरं जगन्ति ॥
आनन्द चिन्मय सदुज्ज्वल विग्रहस्य
गोविन्दमादिपुरुषं तमहंभजामि ॥ १७० ॥

(नारदपंचरात्रे)

भगवान के हर एक अङ्ग सब इन्द्रियों की वृत्ति लिये हुऐ हैं। अर्थात् आँख का काम देखने का है, पांव का काम चलने का, इत्यादि यह सब कार्य एक ही अङ्ग से ले सकते हैं। जैसे देखना, चलना, बात करना, क्यों कि भगवान का स्वरूप जड़ और चेतन का मिश्रित नहीं है, केवल सत् चैतन्य आनन्द रूप और श्रृंगार की परावधि है, ऐसे आदिपुरुष गोविन्दको मैं भजताहूं।

सत्यज्ञानानन्तानन्द मात्रैकरसमूर्तयः ॥
अस्पृष्ट भूरिमाहात्म्या अपिह्युपनिषद्दृषाम् ॥ १७१

श्री भगवान ने ब्रह्माजी को वत्सहरण लीला में अपना वैभव दिखलाया, उस समय श्री शुकदेवजी का वाक्य है कि जितने भगवद् स्वरूप के ब्रह्माजी ने दर्शण किये सब सत्यज्ञान अनन्त और आनन्द मात्र रसरूप जिन का ऐसा भारी वैभव कि जिनकी उपनिषद् दृष्टी है अर्थात् जिन को परम उपनिषदों का ज्ञान स्वतः अनुभव हुआ, ऐसे भी सर्वदर्शी महानुभाव ऋषियों को अगम्य है, इससे यह दर्शाया है कि भगवद् स्वरूप अचिंत्य और मनवाणी के परे है, प्रकृति मंडल में जो स्थित हैं वे उस स्वरूप को अप्राकृत और अपंचिकृत होने के कारण लक्ष्य नहीं करसकते हैं केवल भक्ति गम्य है ॥ १७१ ॥

(श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे १३)

अनेक दिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ।
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगंधानुलेपनम् ॥ १७२ ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ११ अध्याय ११ श्लोके)

श्रीकृष्णचन्द्र ने अर्जुन को जब दिव्य दृष्टि दान की तब श्रीभगवान के दिव्य रूप दर्शन होने लगे, जिनके दिव्य ही भूषण, अनेक दिव्य आयुध धारण किये हुए, दिव्य माला और दिव्य वस्त्र पहिने, दिव्य गंधका लेपन किये हुए इत्यादि ॥ १७२ ॥

॥ पद ॥

साधो झिलमिल नूरनिहारा है ॥
सतगुरु मोको कलावताई, जब निरखी गुलजारा है ॥
कोटिभानु सों अधिक उजेरा, जगमग ज्योति अपारा है ॥
सदा अखंडित अनहद बाजे, ऐसी नोबत द्वारा है ॥

ताके निकट बहत है निशदिन, तिरवेनी की धारा है ॥
स्वेत द्विप जहां नगरी साधो, रंग महल चमकारा है ॥
तामें एक सिंहासन ऊपर, राजत पीव हमारा है ॥
चेतन पुरुष महल है चेतन, चेतन बाग बहारा है ॥
फल अरू फूल लगे सब चेतन, चेतन सबै पसारा है ॥
पांच तत्व गुण तीन नहीं, वहां ताको वारन पारा है ॥
एक रस धाम विपति नहिं, पइयत तीनलोकसों न्यारा है ॥
काम क्रोध नहिं भूखन प्यासा, नहिं संशय संसारा है ॥
सोई जन जाय लहैं वा पदको, धड़ से सीस उतारा है ॥
चरणदास गुरु किरपा कीन्हीं, परसा अविगत प्यारा है ॥
रामरूप भया आनंद आनंद, रहा न और विचारा है ॥

(मुक्तिमार्ग)

जैसे श्रीश्यामचरणदास महाराज ने अमरलोक धाम के वर्णन में साकार दिव्यविग्रह भगवद् रूप व दिव्य धामका कथन किया है, ठीक इसही प्रकार उनके शिष्य श्रीरामरूपजी महाराज भी इस उपरोक्त पद में वर्णन कर रहे हैं। द्वार पर अनहद बजना, स्वेत नगरी नूरके फूल फल इत्यादि ॥

॥ पद ॥

मेरे प्रेमनगर में बसत कन्थ, जाकी ओघट घाटी बिकट पन्थ ॥
मैं परसन चाली प्यारो पीव, कर दीप लियो बिन बाति घीव ॥
है सुखमन मारग चढी धाय, निज कुञ्ज पियाकी पहुंची जाय ॥
जहां सखीभाव भीतरको जाय, रसकेलि करें निजधाम माहि ॥
जिहिं रङ्गमहल के आस पास, बहु संत सखा राखें निवास ॥

जहां अद्भुत लीला अति अगाध, तहां बाजे बाजैं शंख नाद ॥
जहां अमृत वर्षे कामधेन, लखि कल्पवृक्ष मन भयो चैन ॥
जहां कई रङ्गके फूले फूल, कोई निरखै जन जग व्याधि भूल ॥
गुरु चरनदास दीन्हो बताय, सो नूपी बाई लीन्हो पाय ॥
(श्रीश्यामचरणदास महाराज की शिष्य श्रीनूपीबाई कृत)

आनन्दः द्विविधप्रोक्तो मूर्तश्चामूर्तएव च ।
अमूर्तस्याश्रयोमूर्तः परमात्मा नराकृतिः ॥ १७३ ॥
(नारद पञ्चरात्रे)

आनन्द दो प्रकार का है । एक मूर्तिमान, दूसरा अमूर्ति मान, अमूर्तिमान का आश्रय, मूर्तिमान नराकार परमात्मा है ॥ १७३

तदुहोवाच हैरण्यो गोपवेशमभ्राभं-
तरुणं कल्पद्रुमाश्रितम् ॥ १७४ ॥
(अथर्ववेद गोपालतापनी उपनिषद् पूर्वार्द्ध मं० १२)

श्रीब्रह्मा सनकादिकों को कहते हैं कि परमात्मा सुवर्ण सदृश दीप्यमान गोपवेश नव घनश्याम तरुण और कल्पद्रुम के नीचे बिराजमान है, ऐसे स्वरूप का ध्यान करे ॥ १७४ ॥

कृष्णं तं विप्रावहुधायजन्तिगोविंदं सन्तं वहुधाऽराध-
यन्ति गोपीजनवल्लभोभुवनानिदध्रे ॥ १७५ ॥
(गोपालतापनी उपनिषद् पूर्वार्द्ध मं० २२)

श्रीकृष्णाचन्द्र भगवान का ऋषिगण वहुते प्रकार से यजन करते हैं, गोविंदका वहुतप्रकार आराधन करते हैं, गोपीजनवल्लभ भुवनों को धारण करते हैं ॥ १७५ ॥

योऽसौ सौर्यें तिष्ठति योऽसौ गोषु तिष्ठति योऽसो गाः पालयति योऽसो गोपेषु तिष्ठति योऽसो सर्वेषु वेदेषु तिष्ठति योऽसौ सर्वैर्वेदैर्गीयते इत्यादि ॥ १७६ ॥

(अथर्ववेद गोपालतापनी उपनिषद् उत्तरार्द्ध मं० २३)

जो सूर्यमंडल में स्थित है, जो गोओं में स्थित है, जो गोओं को पालता है, जो गोपो में स्थित है, जो सब वेदों करके गाया गया है इत्यादि ॥ १७६ ॥

* धाम वर्णन *

श्रीश्यामचरणदास महाराज के तथा इनके शिष्य श्री स्वामी रामरूप और नूपी बाई के ऊपर लिखे हुए पदों से स्पष्ट है कि भगवत् धाम तेजोमय (नूरी) ब्रह्मरूप, अचल, अखंड, अव्यय, नित्य, मन वाणी के अगोचर, निर्मल, त्रिगुण रहित, अपश्री कृत और दिव्य है। काल कर्म की बाधा से रहित है, केवल शुद्ध ब्रह्म विलास है। सच्चिदानन्द मयीधाम व धामी व कुञ्जलता, दास दासी आदिक हैं, दिव्यरूप से दिव्य ही विलास नित्य अखण्डित करते हैं।

॥ दोहा ॥

अखण्डधाम लीला अमर, नित वृन्दावन रास।
नित विहार जहं होत है, चरणदास को बास ॥ १२७ ॥

(भक्ति सागरे)

**न तद्भासयतेसूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ १७७ ॥**

(श्रीमद्भगवद्गीता १५ अध्याय ६ श्लोके)

जिस को सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, प्रकाश नहीं करते हैं, जिस को प्राप्त होकर फिर संसार में नहीं आते हैं, वह मेरा परमधाम है, यहां धामको स्वयम् प्रकाशी बतलाया है ॥ १७७ ॥

तद्विष्णोः परमंपदं सदा पश्यन्ति सूरयः
दिविवचक्षुराततम् ॥ १७८ ॥ (श्रुति)

उस विष्णुके परमपद को सर्वज्ञ महात्मा दर्शन करते हैं, सूर्य की तरह आकाश में प्रकाशमान है ॥ १७८ ॥

ततस्थानंकोटिसूर्यप्रतिकाशंतेजोमयं यत्निर्गुणं ब्रह्मपुराविदोवदन्ति । यस्मात्प्रजासमुत्पन्नाः ब्रह्मविष्णुरुद्रादयः रसमार्गिणः भक्तायंस्थानं प्राप्नुवंति ॥ १७९ ॥

(रहस्योपनिषद् सामवेदे)

वो स्थान करोडों सूर्य सदृश तेजोमय है, जिसको सर्वदर्शी मुनी निर्गुण ब्रह्म बतलाते हैं, जिस से प्रजा उत्पन्न हुई, ब्रह्मा, बिष्णु, रुद्रादिक प्रकट भये, रसमार्गी भक्त उस स्थान को प्राप्त होता है ॥ १७९ ॥

* अवतार प्रकर्ण *

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपिसन् ।
प्रकृतिंस्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ १८० ॥
यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ १८१ ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ १८२ ॥
जन्म कर्म च मे दिव्य मेवंयो वेत्ति तत्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नेति मामेति सोऽर्जुनः ॥ १८३

(श्रीमद्भगवद्गीता ४ अध्याय ६ से ९ श्लोक तक)

श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन प्रति कहै हैं कि मैं अजन्मा, अव्यय और प्राणी मात्रों का ईश्वर होकर भी अपनी योगमाया से अवतार धारण करता हूं ॥ १८० ॥

जब जब धर्म की हानि होती है तो अधर्म को नष्ट करने के लिए और साधुओं की रक्षा तथा दुष्टों के दमन के लिए युग २ में अवतार धारण करता हूं ॥ १८१–१८२ ॥

जो लोग मेरे जन्म और कर्म (लीला) को तत्व करके दिव्य जानते हैं, वे शरीर त्याग करके मुझ को प्राप्त होते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता है ॥ १८३ ॥

भावार्थ यह है कि जिनको यह निश्चयात्मक बुद्धि होगई है कि भगवान् के अवतार और जीवों के जन्म की तरह नहीं है, भगवान् का संसार में जन्म लेना और लीला करना यह सब महा अलौकिक है, वे सच्चे विश्वास और लगन से उन अवतारों की भक्ति करेंगे उस से भगवद् वाक्यानुकूल निश्चयही जन्म मरण से छूटकर भगवद् सान्निध्य प्राप्त करेंगे ।

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं
चतुर्भुजं शंखगदाद्युदायुधम् ॥

श्रीवत्सल मङ्गलशोभिकौस्तुभं
पीताम्बरंसान्द्रपयोदसौभगम ॥ १८४ ॥
(श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धे)

श्रीभगवान् कों देवकी के गर्भसे उतपन्न होना अलोकिक है, इस विषय में श्री शुकमुनि महाराज का वाक्य है कि देवकी ने जन्म समय षोडश वर्ष की अवस्था जिनकी शंख, चक्र, गदादिक आयुध धारण किये हुए कौस्तुभमणि कण्ठ में विराजमान, पीताम्बर पहने, नवीन श्यामघन जैशी शरीर की सुन्दरता जिनके वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिन्ह ऐसे अद्भुत बालक रूप में (योनिसे जन्म लेने वाले अन्य जीवों की तरह आपने जन्म नहीं लिया) यका यक देवकी को दिव्य विग्रह से दर्शन दिया और फिर उनके प्रार्थना करने पर बालक रूप धारकर रुदन करने लगे। हरि अवतार के अगणित हेतु होते हैं, किस की सामर्थ्य हैं कि उन सब की गणना करसके, उनमें से कुछ एक मुख्य २ श्रीमद्भागवत् अष्टम अध्याय प्रथमस्कन्ध में श्री कुन्तिजी की स्तुति में वर्णन किये हैं, विस्तार भय से यहां नहीं दिये हैं, उन में खास यह बतलाया कि यहां अवतार धारण करके श्रीभगवान् नें ऐसी ऐसी लीलायें की हैं की जिन की भावना करने से जिस संसार को तरना योग सांख्य आदि मार्गों से अति कठिन था उस को सुख साध्य बना दिया यह भगवान् की अत्यन्त ही कृपा है कि मनुष्यों को सन्मुख करने के लिए अपने ऐश्वर्य को ढककर भी मनुष्यों में उनकी तरह

मिलकर विचरना कि किसी प्रकार मनुष्याकार स्वरूप ध्यान तथा लीला से आकर्षित होकर जीव सन्मुख हों यही कारण है, श्रीकृष्णावतार के पश्चात् कलियुग में इतने भक्त हुए जितने और युगों में भी जो धर्म आदि के लिए परम उपयोगी थे नहीं हुए ॥ १८४ ॥

(श्रुति)

प्रतद्विष्णुःस्तवतेवीर्येनमृगोनभीमः कुचरोगिरिष्ठाः
यस्योरुषुत्रिषुविक्रमणेष्वधिक्षियांतिभुवनानिविश्वा।

(ऋग्वेद मं० १ अनु० २ सू० १५४)

वहविष्णु पृथिवी पर विचरने वाले और पर्वत में रहने वाले सिंहके समान बलके साथ अवतीर्ण होता है, जिसके तीन पाद क्रमणों (कदमों) में संपूर्ण लोक नीचे रहजाते हैं। इस श्रुतिसे भगवान् का नृसिंहावतार धारणकरना बतलाया है ॥ १८५ ॥

कालिकोनामसर्पो नवनागसहस्रबलः।
यमुनाह्रदेहसोजातो योनारायणवाहनः॥ १८६ ॥

(ऋक्परीशिष्ट पञ्चमाष्टकस्य द्वाविंशत् वर्गान्तरे)

हजार हाथियों के बलवाला कालिक नामका सर्प है, जो यमुना के प्रवाह में उत्पन्न हुआ है और नारायण का वाहन है। इससे काली नाग का कृष्ण से नाथाजाना यमुनाद्रह में स्पष्ट है ॥ १८६

इसके सिवाय सामवेद का रहस्योपनिषद् अथर्ववेद की गोपालतापनी उपनिषद् आदि तो श्रीकृष्णावतार व कृष्णलीला को ही आदि से अन्त तक वर्णन करते हैं, उनके कुछ प्रमाण पहिले साकार निराकार निर्णय में दे चुके हैं।

एतेचांशकलाः पुंसः कृष्णस्तुभगवान्स्वयम् ।
इन्द्रारिव्याकुलंलोकं मृडयन्ति युगे युगे ॥ १८७ ॥

(श्रीमद्भागवत एकादशमस्कन्धे तृतीयोअध्याय)

और सब अवतार भगवान के अंश और कला हैं, युग युग में दैत्यों से व्याकुल पृथ्वी का भार उतारते हैं, परन्तु श्रीकृष्णचन्द्र तो साक्षात् स्वयं भगवान पूर्ण पुरुषोत्तम हैं ॥ १८७ ॥

मरिच्यादि तो अंशके अंश हैं, कपिल, कूर्म आदि कला हैं, परशुरामादिक आवेशावतार हैं, नृसिंह, रामचन्द्र आदिक पूर्ण और श्रीकृष्णचन्द्र परिपूर्णतम हैं, नारायण क्षीरोदशायी, भूमा पुरुष आदि विलासावतार हैं, अर्थात् विलासके लिये रूपभेद है, वास्तविक नहीं, रासलीला में श्रीकृष्ण ने अनेक रूप धारण किये वह प्रकाशावतार है । श्री शुकमुनि, श्रीनारद, सनकादिक आदि भक्तावतार हैं ।

श्रीश्यामचरणदास महाराज ने अमरलोक में जो परात्पर पुरुषोत्तम नित्य बिहारी वर्णन किये हैं, वह तो अवतारी और अवतार दोनों से परे हैं ।

॥ दोहा ॥

अवतारी अवतार नहिं, यह दोउ नित्य किशोर ।
नितअखंड बिहरत बिपिन, नहिंजानत रजनी भोर ॥ १२८ ॥
परते पर यह हैं दोउ, इनते पर नहिं आन ।
रह्यो न है नहिं होयगो, दूजो इनहिं समान ॥ १२९ ॥
प्रकृति पुरुष ये हैं नहीं, ये दोउ एक स्वरूप ।
युगल अनादि बिराज हीं, कुंजमहल के भूप ॥ १३० ॥

निर्गुण सगुण के परे, इनको रूप अपार।
कैसे वर्णन कीजिये, रसना सों उच्चार ॥ १३१ ॥
ये दोऊ परब्रह्म हैं, इन नूपुर झुनकार।
प्रगट भयो है ब्रह्म जेहि, पण्डित करत विचार ॥ १३२ ॥
प्रगट्यो ईश्वर को इन्हैं, ये परमेश्वर जान।
नित्य विहार के कारणे, जामें होय न हान ॥ १३३ ॥
माया कृत ये हैं नहीं, इन्हैं निरञ्जन जान।
माया आज्ञा बस सदा, नाचत बिबिध विधान ॥ १३४ ॥
निराकार इन्हैं जानिये, छिन छिन छबि पलटात।
रूपसिन्धु यह हैं दोऊ, कहत बनत नहिं बात ॥ १३५ ॥
तत्व स्वरूपी जानिये, इन से परे न तत्व।
सेव्य स्वरूपी हैं यही, त्रिभुवन में यह सत्व ॥ १३६ ॥
है अनन्त जाकी छवि, और अनन्त विहार।
है अनन्त जिन उर दया, करणा सिन्धु उदार ॥ १३७ ॥
पंच उपास में हैं नहीं, यह दोउ युगल स्वरूप।
रसिकन के यह धन युगल, राख हिये में गूप ॥ १३८ ॥

(भक्तिरसमंजरी ग्रन्थे)

" अवतारी अवतार नहीं " इस से यह अभिप्राय है कि अवतारी तो नारायण हैं, जिनको ईश्वर विष्णु इन नामों से वेदमें वर्णन किया है, इनहीं को श्रीवल्लभाचार्यजी ने लोकवेद प्रसिद्ध पुरुषोत्तम वर्णन किया है, इनहीं से सब अवतार तथा जगतकी सृष्टिपालन और प्रलय होते हैं, इनके ही गुणावतार ब्रह्मा और शिव हैं, नित्य विहारी तो इन सबसे परे हैं, इसही कारण

यह भी कहा है कि "प्रकृति पुरुष ये हैं नहीं" श्रीवल्लभाचार्य्यस्वामी ने नित्य विहारी को रसात्मक पुरुषोत्तम कहा है, सामवेद के रहस्योपानिषद में रसिकानन्द पुरुषोत्तम वर्णन किया है।

पँच उपास में हैं नहीं, इससे यह मतलब है कि सूर्य, दुर्गा, गणेश, महेश, यह देवता तो श्री युगल सरकार की विभूती और विष्णु आपका विलासावतार हैं, याते आप पंच देवतान की उपासना में नहीं है। "इन नूपुर झुनकार प्रगट भयो है ब्रह्म" यासे यह अभिप्राय है कि युगल प्रभून के नुपुरों के रवसे ओंकार प्रगट हुआ, इससे तमाम जगत की रचना हुई।

कृतायुग्मेनसाकेलि महानंदमयिध्रुवा।
तत्रजातोमहाराव सएवब्रह्मसंज्ञिकः ॥ १८८ ॥

श्री राधा-कृष्ण ने महा आनन्दमयी केलि अर्थात् रासविलास किया, उन में नूपुरों का महारव हुआ, उसही को ब्रह्म कहते हैं।

ततः प्रकृति पुरुषौ ततो नरायणोऽभवत् ॥ १८९ ॥

(श्रीसनत्कुमारसंहिता)

तिस ब्रह्मसे प्रकृतिपुरूष प्रगटभये, तिनसे नारयण प्रगटभये १८९

श्री युगल प्रभु अखिल सद्गुणों के भंडार हैं, इसकारण भी आपको कोई कोई सगुण कहते हैं, वे अलौकिक गुण ये हैं, ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य तेजोवीर्य, सौशील्य, वात्सल्य, आर्जव, सौहार्द, सौम्यता, कारुण्यता, स्थिरता, धैर्य, दया, मार्दव आदि॥

स्वभावतोपास्तसमस्तदोषंअशेषकल्याणगुणैकराशिं

व्यूहाङ्गिनंब्रह्मपरंवरेण्यंध्यायनकृष्णाकमलेत्तणंहरिम्

(श्रीनिम्बार्क स्वामीकृत दशश्लोकी)

स्वभाव से समस्त दोष रहित तथा समस्त कल्याण गुणों का मुख्य आधार वासुदेवादि चतुर्व्यूह के अंगी, ब्रह्मा शिवादिकों के कारण स्वरूप, गुणशक्ति से व्यापक, कमल के सदृश नेत्रवाले, भक्तजनों के पापों के हरनेवाले, मुमुक्षुओं को उपासनीय, ऐसे श्रीकृष्ण परब्रह्म का हम ध्यान करते हैं ॥ ११० ॥

* श्रीराधा तत्व *

"वामाङ्गसहितादेवी राधावृन्दावनेश्वरी" ॥१९१॥

(कृष्णोपनिषद् श्रुति)

श्रीकृष्ण के वामाङ्ग में स्थित वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा देवी है १११

"राधया माधवोदेवो माधवेन च राधिका विराजते"

(ऋक्परिशिष्ट श्रुति)

श्रीराधा देवी से श्रीमाधव देव और श्री माधव देव से श्रीराधा शोभित होती हैं ॥ ११२ ॥

"नारायणाद्ब्रह्माजायते नारायणद्रुद्रोजायते"

(नारायणोपनिषद्)

नारायण से ब्रह्मा प्रकट होते हैं, नारायण से रुद्र प्रकट होते हैं ११३

"अतोदेवाअवन्तुनो यतोविष्णुर्विचक्रमेपृथिव्याः सप्तधामभिः" ॥ ११४ ॥

(ऋग्वेद)

जीवों के कल्याण के ही अर्थ श्रीकृष्णभगवान गायत्री

आदिक छंदो के साथ इस पृथ्वी पर विहार किया है। (ऋचारूपी गोपियों के साथ) विद्वानजन उस हेतु के जानने वाले लीला कथा नामोपदेश से जीवों की रक्षा करे ॥ ११४ ॥

य एषोंतरादित्योवहिरणमयः पुरुषः हिरण्यश्मश्रु- हिरण्यकेश ॥ १६५ ॥ (श्रुति)

यह जो सूर्य मण्डल में स्थित परमात्मा हैं सो प्रकाशमय हैं, प्रकाशमय केशआदिक हैं, अर्थात् प्रकाशमय (नूरी) विग्रह भगवान का है ॥ ११५ ॥

यः पूर्व्यायवेधसेनवीयसे सुमज्जानय विष्णवेददा- शतियोजातमस्यमहतो महिंब्रवत्सेदुश्रवोभियु- ज्यंचिदम्यसत् ॥ १९६ ॥

(ऋग्वेद मं० १ सु १५६ मं २)

अनादि विविध जगत स्रष्टा नित्य नवीन (नवकिशोर) जगदानन्ददायिनी निजकांता (आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा) प्रियाविष्णु (कृष्ण) भगवान को जो पुरुष जल, तुलसी, पुष्पादि देता है और जो इन महापुरुष के पूज्य यश सहित जन्म का कीर्त्तन करता है, वह भी नित्ययुक्त उनके स्थान को निश्चय प्राप्त होता है ॥ ११६ ॥

परास्यशक्तिर्विविधैवश्रूयते स्वाभाविकीज्ञानक्रिया- बलेतितासुल्हादिनीगरीयसी ॥ १९७ ॥ (श्रुति)

परमात्मा की विविध स्वाभावि की पराशक्ति, ज्ञानशक्ति,

क्रियाशक्ति, बलशक्ति आदि उन में आह्लादिनी शक्ति (श्रीराधा) श्रेष्ठ है ॥ ११७ ॥

स्वयमेवसमाराधानकरोतियतःस्वयमेवमाधवो-
तस्मात्लोकेवेदे श्रीराधागीयतेस्वाधीनतय एक-
रूपंद्विधाविधायरमयांचकारतस्मात्राधाकृष्ण-
रूपमैक्यंसर्वतः इत्यादि ॥ ११८ ॥

(आपस्तम्ब शाखा)

स्वयं श्रीकृष्ण आराधना करते हैं, इस कारण लोक और वेद में श्रीराधा यह नाम हुआ, भगवान स्वाधीनता से अपने एक रूपको दो (राधाकृष्ण) रूप करके रमण किया, इसही कारण राधा-कृष्ण की एकता सर्वप्रकार है ॥ ११८ ॥

इन श्रुतियों से यह भी निश्चय होता है कि जैसे बहुत से पण्डित लोग श्री राधाकृष्ण को प्रकृति पुरुष बतलाते हैं सो अयोग्य हैं, श्रीयुगल प्रभू तो एक प्राण एक तत्व हैं, लीला के अर्थ दो स्वरूप धारण करे हैं, सो ही संमोहनतन्त्र के गोपालसहस्रनाम में भी कहा है ।

"तस्माज्जोतिरभूद्द्वेधा राधामाधवरूपकम्" ११९

जो एक ज्योति रूप परमात्मा है, सो ही राधामाधव दो रूप धारण करें हैं ॥ ११९ ॥

राधे भूषण छबि कह गाऊँ * नाम लेत मनमें शरमाऊँ ॥

(भक्तिसागर ब्रजचरित्रे)

श्रीस्वामी श्यामचरणदासजी महाराज ब्रजचरित्र वर्णन में

श्रीकृष्णचन्द्र का नखशिख शृङ्गार वर्णन करके श्रीराधिका का शृङ्गार वर्णन करते समय यह कहे हैं कि श्रीराधामहारानी भूषणों की छवि क्या वर्णन करूं, नामलेने में भी मन में सकुच पैदा होती है अर्थात् श्रीराधिका तत्व ऐसा परात्पर और गोपनीय है कि प्रत्यक्ष में वर्णन करना ठीक नहीं, ठीक ऐसे ही अभिप्राय से श्रीशुकमुनी ने श्रीमद्भागवत में प्रत्येक्ष नाम लेकर श्रीप्रियाजी का वर्णन नहीं किया, रास पंचाध्यायी में " अपनी प्यारी को लेके अन्तरध्यान भगवान हुए" इस तरह वर्णन किया है और प्रिया, कान्ता, बधू आदि शब्दों से वर्णन किया है स्पष्ट रूपसे नही " अनयाराधितो" इन शब्दों से गूढ रूप से श्रीराधिका का नाम भी वर्णन किया है, वैसे श्रीराधिका का महाभाव व परम उत्कट प्रेम श्रीकृष्ण में व श्रीकृष्ण का सेवकवत प्रियाकी सेवा करना, वेणीगूथन, स्कन्धपर चढाना आदि यह पूर्णरीति से उसी रास पञ्चाध्यायी में श्रीशुक-मुनी ने वर्णन किये हैं।

संमोहनतन्त्र के गोपालसहस्रनाम के आदि में श्रीशिवजी श्रीपार्वतीजी से कहते हैं कि-

गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नत ॥ २०० ॥

श्रीराधा-कृष्ण तत्व अत्यन्तही गुप्त रखने के योग्य है, यह तो केवल रसिकों काही धन है ॥ २०० ॥

श्रीस्वामी चरणदासजी महाराज भक्तिरसमञ्जरी ग्रन्थ में श्रीरामसखीजी प्रति वर्णन करते हैं कि हे रामसखी! यह परम

गोप्य रहस्य है, यह अमोल रत्न डिबिया में कई संपुट दे कर छिपा कर रखने की जरूरत है, इस ही कारण मैंने भक्तिसागर ग्रन्थ में जहां तहां रामनाम ज्यादा लिया है, इस नाम की डिब्बिया में युगल सरकार को लुकाकर रक्खा है।

श्रीराधिका को शास्त्रों में "गोविंदहृदयोद्भवा" गोविंद के हृदय से प्रकट भई मानी है, इसही कारण महात्माओं ने "एकप्राण दो देह" वर्णन किये हैं, वेदमें आपको आह्लादिनी शक्ति वर्णन की है, अर्थात् भगवान का हृदय का आह्लाद है, सोही स्वरूप धारण करके अनेकानेक लीला करके उन परमात्मा को सुख देवे हैं, उनकी लीला विहार सब महादिव्य और अलौकिक है, श्रीप्रियाजी जब आप के हृदय से उत्पन्न होने वाली आत्मा ही है, तो अपनी आत्माके साथ कोन नहीं बिहार करता, "प्राकृत क्रीड़ा काम की नेक नही वा ठौर"।

(श्रीभक्तिरसमंजरी श्रीस्वामी चरणदास बचन)

प्राकृत काम को तो आपने श्रीकृष्णावतार में दिव्य रास लीला के आदि में ही जीत लिया। जब बंसीनाद करके गोपीजनों को बनमें बुलाया, तो कामदेव ने मनमें बिचारा कि मैंने, ब्रह्मा, शिव तक को परास्त कर दिया है, केवल एक श्रीकृष्ण रहे सो भी इस समय गोपियों को बनमें एकान्तस्थल में बुला रहे हैं, यह मोका मेरे लिये श्रीकृष्ण को परास्त करने का बहुत ही अच्छा आगया है, सब बातें मेरे अनुकूल भी हैं, जैसे शरद ऋतु अनुकूल पवन प्रफुल्लित बन, नवयौवन श्रीकृष्ण व नवयौवना गोपीगण आदि, यह कामदेव का विचार

जब भगवान को मालूम हुवा तो आपने उसको परास्त करने के लिये गोपीजनों को वेदमार्ग का उपदेश देकर अपने २ घर लोट जाने के लिये कहा, अपने आपको यह दर्शाया कि मैं निर्विकार (कामादि चेष्टा शून्य) हूं। केवल गोपी जन जो परमप्रेमी भक्त हैं, उनके मनोरथ पूर्ण करने के लिये ही बनमें बुलाई हैं, जब काम निराश होगया, तब फिर आपने उन गोपीजनों को दिव्य रास विलास का आनन्द प्राप्त कराया किन्तु उन गोपीजनों के चित्त में यह भाव उत्पन्न होगया कि प्यारे तो हमारे आधीन हैं, हम जैसे नचावें नाचते हैं, ऐसा प्राकृत कामी सा समझने का किंचित मात्र भी भाव उनके हृदय में आते ही आप अन्तरध्यान होगये, यह दिखलाया कि तुह्मारा किंचित भी प्राकृत भाव हुवा तो मैं तुमसे बहुत दूर होगया।

* पंचरस वर्णन *

शान्त रस, दास रस, वात्सल्य रस, सख्य रस, कांत कांता रस, यह पांच रस हैं।

छन्द—दास चरण भुज सखा सुहाये वात्सल्य उरराजै।
उज्ज्वल शीश प्रियांको परिकर गोपी इन्द्रीछाजै ॥
(भक्तिरसमञ्जरी ग्रन्थे)

गुणमहात्म्या सक्ति, दासा सक्ति, सख्या सक्ति, वात्सल्या सक्ति, कान्ता सक्ति। (नारदसूत्रे)

भगवदासक्ति पांचप्रकार है, शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर।

येषामहंप्रियआत्मासुतश्चसखागुरुः सुहृदोदैवमिष्टम्।
(श्रीमद्भागवत तृतीयोस्कन्धे)

श्रीभगवान कहै हैं कि जिन भक्तों का मैं प्यारा (श्रृङ्गार रस) पुत्र (वात्सल्य) सखा (सख्यरस) गुरू सुहृद और इष्टदेव (दासरस) हूं ॥ २०१ ॥

शांत दास्य आदिक पंचरसों में मधुर रस सर्व श्रेष्ठ हैं, इसही रस में श्रीशिवजी, सनकादिक, नारद, श्रीशुकमुनी आदिक गलतान रहते हैं।

सनतकुमारसंहिता, रहस्योपनिषद आदिक ग्रन्थों में उनका वर्णन है। सम्प्रदायों के जो रहस्य ग्रन्थ हैं उनमें बहुत विस्तार से बर्णन है, इसही प्रकार श्रीशुकसम्प्रदाय के रहस्य ग्रन्थ श्रीरामसखीजी की बाणी तथा श्रीअखेरामजी आदिककी बाणी में श्रीशुकमुनी तथा श्रीचरणदासजी के सखी रूप का वर्णन विस्तार पूर्वक है जो पहले दे चुके हैं। सिद्धांत यह है कि जितने जीव है सब अबला स्वरूप है, केवल एक परमात्मा ही पुरुष रूप है, अर्थात जीव अबला की तरह सब तरह भगवत आधीन है, परमात्माही परमपुरुषार्थ का भंडार है. इसही भाव से मधुर उपासना की जाती है. इसमें प्राकृत स्त्री पुरुष भाव व काम, क्रीड़ा जो समझते हैं वे अज्ञानी हैं।

॥ दोहा ॥

प्राकृत क्रीड़ा काम की, नैक नहीं जहां वास।
किंचित कोर कटाक्षते, कोटि मदन मद नास ॥ १३१ ॥

(भक्तिरसमंजरी ग्रन्थे)

श्रीशुकमुनी ने श्रीमद्भागवत में रास पंचाध्यायी की भलस्तुति में यह वर्णन किया है।

व्रजवधूभिरिदञ्च विक्रीड़ितंविष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुश्रृणुयादथवर्णयेद्यः ।
भक्तिः परांभगवतिप्रतिलभ्यकामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेणधीरः ॥ २०२ ॥
(श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धे)

व्रज गोपियों के साथ भगवान के विहार को जो श्रद्धा सहित सुने या वर्णन करे वो भगवान में पराभक्ति प्राप्त करके हृदय के रोग को शीघ्रही मेट देता है ॥

यदि श्रीकृष्णचन्द्र का विहार काम क्रीड़ा ही होती तो श्रीशुक-मुनी जैसे परमहंस हैं जिन्हों ने जन्मतेही संसार त्याग दिया वे इतनी महिमा नहीं करते, पराभक्ति बड़े बड़े मुनियों को कई जन्मोंके साधन से भी दुर्लभ है, उसके लिए कहते हैं कि भगवान की रासलीला का श्रवण ध्यान करने से शीघ्रही प्राप्तहो जाती है।

भगवत की माधुर्य लीला में बगैर सखीभाव का ब्रह्मादिक देवताओं की भी गम नहीं है। श्रीशिवजी भी गोपी रूपसे ही इस लीला में प्रविष्ट हुए हैं।

जब शुद्धहोके निर्गुण अवस्था को जीवात्मा पहुंच जाता है, तबही परात्पर धाम भगवत का प्राप्त होता है, वहां कामादिक क्रीड़ा का तो विचार ही क्या है, श्रीस्वामी चरणदासजी अमर-लोक वर्णन में कहते हैं।

॥ चौपाई ॥

काम क्रोध नहिं लोभ अधीरा ❀ निर्मल दशा शील गुणधीरा ॥
नित्य किशोरी गोरी सारी ❀ पांच तत्व त्रिगुण ते न्यारी ॥

श्रीमद्राधिकाजी को शास्त्रों में 'गोविंद हृदयोद्भवा' वर्णन किया है, अर्थात् आप श्रीकृष्णकी साक्षात् आत्मा है, अपनी आत्मा में कौन नहीं रमण करता है, भगवत् आल्हाद रूप हैं, इसही कारण आल्हादनी शक्ति आपको कहते हैं।

* अथ एकादशी व्रत और जागरण माहात्म्यं *

॥ चौपाई ॥

ग्यारस व्रत से ऐसे रहिये * जैसे धर्म नीक को चहिये ॥
सांचा व्रत बताऊ तोहीं * गुरु शुकदेव बताया मोहीं ॥
नवमी नेम करे चितलाई * दशमी संयम युक्ति बताई ॥
ग्यारस व्रत बताऊं नीका * सबही व्रत शिरोमणि टीका ॥
निर्जल करे नीर नहीं परसै * पोह फाटे जब सूर्य दरसै ॥
एक पहर के तड़के जागै * जबही सुमरण करने लागै ॥
करे विचार शुद्ध कर काया * जाकर बैठै भवन मझाया ॥
कोठे के पट देकर राखै * नर नारी सों बचन न भाखै ॥
कुंड़ काढ बैटे तिहीं माहीं * ताके बाहर निकसे नाहीं ॥
कर आवाहन आसन मारे * व्रत करै वैराग्य ही धारे ॥
जप गुरु मंत्र और हरिध्यानां * जाको नेक नहीं विसरानां ॥

॥ दोहा ॥

जो तेरे गुरु ने कहा, जाका करतु ध्यान।
बैठो अस्थिर नो पहर, करो व्रत पहचान ॥ १४० ॥
व्रत करै त्योंहारसा, ना ना रस के स्वाद।
भोग करे तपना करे, सब करनी बरबाद ॥ १४१ ॥

॥ चौपाई ॥

पांचो इन्द्री ब्रत करीजे * पलक झांप नैमन पट दीजे ॥
इत उत मनवा नांहि चलावे * आंखन को नहीं रूपदिखावे ॥
श्रवण शब्द न खईये भाई * त्वचास्पर्शन अङ्ग लगाई ॥
षटरस स्वाद न जिह्वा दीजे * नासा गंध सुगंध न लीजे ॥
ऐसा ब्रत करे सो वर्ता * मुक्त होय ग्यारसका कर्त्ता ॥
ऐसा बरत उतारे पारा * छौनां तिरत लगे नहिं बारा ॥
बहुर द्वादशी बाहर आवे * अपनी श्रद्धा द्विज भुगतावे ॥

(षटरूपमुक्त ग्रन्थे श्रीचरणदासजीवाक्यं)

आरिराधयिषुः कृष्णां महिष्यातुल्यशीलया ।
युक्तः सांवत्सरंवीरो दधारद्वादशीव्रतम् ॥ २०३ ॥

(श्रीमद्भागवत नवमस्कन्धे)

श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने की इच्छा से राजा अम्बरीष ने अपने समान शीलवाली रानी के साथ वर्ष पर्यन्त एकादशी व्रत धारण किया ॥ २०३ ॥

प्रसादान्नसदाग्राह्य मेकादश्यां न नारद ।
रमादिसर्वदेवानाम् मनुष्याणां तुका कथा ॥ २०४ ॥

(महाराज)

प्रसाद अन्न सदा ग्रहण करे किन्तु एकादशी को नहीं यह रमाआदि सब देवताओं के लिए नियम है, मनुष्यों की तो क्या कथा ॥ २०४

वैष्णवोयदि भुञ्जीत त्वेकादश्यांप्रसादधीः ।

विष्णोऽर्चावृथातस्य नरकंघोरमाप्नुयात् ॥ २०५ ॥

(श्रीकृष्ण वचनं, सनतकुमारप्रति)

वैष्णव यदि प्रसाद समझकर एकादशी के दिन भोजन करे तो विष्णु की सेवा निष्फल होय और घोर नरक को प्राप्त हो।

वरंस्वमातृगमनं वरंगोमांसभक्षणं।
वरंहत्याशुरापानं नैकादश्यां तु भोजनम् ॥ २०६ ॥

अपनी माता में गमन करना, गोमांस भक्षण करना, हत्या वा शराब पीना, यह भी चाहे होजाय, किन्तु एकादशी के दिन भोजन ठीक नहीं अर्थात् इन सबसे भी अधिक पाप होता है।

ये कुर्वन्तिमहीपाल श्राद्धमेकादशीदिने।
त्रयस्तेनरकंयांति दाताभुक्पितरस्तथेति ॥ २०७ ॥

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराणे)

जो एकादशी के दिन श्राद्ध करते हैं तो श्राद्ध करने वाला, भोजन करने वाला और पितर सब नरक को प्राप्त होते हैं।

एकादश्यांनिराहारः समभ्यर्च्यजनार्दनम्।
स्नातुंनंदस्तुकालिंद्या द्वादश्यांजलमाविशत् ॥ २०८

(श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धे)

श्रीनन्दराय एकादशी के दिन निराहार रहकर जनार्दन भगवान का पूजन किया, फिर द्वादशी के दिन स्नान करने के लिए कालिंदी के जलमें प्रवेश किया ॥ २०८ ॥

एकादश्यांयदाराम श्राद्धंनैमित्तिकंभवेत् ।
तद्दिनंतुपरित्यज्य द्वादश्यां श्राद्धमाचरेत् ॥ २०१ ॥
(पद्मपुराणे)

एकादशी के दिन यदि नैमित्तिक श्राद्ध होय तो द्वादशी के दिन करे ॥ २०१ ॥

गीतं वाद्यं नृत्यं च पुराणपठनं तथा ।
धूपं दीपं च नैवेद्यं पुष्पं गंधानुलेपनम् ॥ २१० ॥
फलमर्घं च श्रद्धा च दानमिन्द्रियसंयमम् ।
सत्वान्वितं विनिद्रं च मुदान्वितं क्रियान्वितं ॥ २११
साचार्य्यं च सहोत्साहं पापालस्यादिवर्जनम् ।
प्रदक्षिणासुसंयुक्तं नमस्कारपुरः सरम् ॥ २१२ ॥
नीराजन समायुक्त मनिर्विण्णे न चेतसा ।
यामे यामे महाभाग कुर्यादारार्त्तिकं हरेः ॥ २१३ ॥
षट्विंशगुणसंयुक्त मेकादश्यां तु जागरम् ।
यः करोतिनरो भक्त्या न पुनर्जायतेभुवि ॥ २१४ ॥
(ब्रह्मांडपुराणे)

गाना, बजाना, नृत्य, पाठ, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, चन्दन आदि लेपन, फल, अर्घ, श्रद्धा, दान, इन्द्रिय संयम, सत्वयुक्त, निद्रा रहित, हर्ष युक्त, क्रियायुक्त, आचारयुक्त, उत्साहयुक्त, पाप और आलस्य वर्जित प्रदक्षिणा व नमस्कार युक्त, आरती युक्त, अव्यग्र चित्तयुक्त, प्रहर प्रहर में आरती युक्त, ऐसी तरह तरह

गुणयुक्त, जागरण जो जन करता है ॥ २१० से २१४ ॥

कांस्यं मांसं मसूरं च चौरं चा नृतभाषणं।
पुनर्भोजन मैथुने दशम्यांदशवर्जयेत् ॥ २१५ ॥
कांस्यं मांसं सुरा चौरं लोभवितथभाषणं।
व्यायामं च प्रवासं च दिवास्वप्नमथाञ्जनम् ॥ २१६

(स्कन्धपुराणे)

कांसी, मांस, मसूर, हजामत, झूठ बोलना, दूसरी बार भोजन, स्त्री संग, यह दशमी को त्याग करने चाहिये। कांसी, मांस, शराब, हजामत, लोभ, झूठ बोलना, कसरत, परदेस जाना, दिन में सोना, अञ्जन, यह द्वादशी को वर्जनीक हैं ॥ २१५-२१६ ॥

॥ संग्रह करता, दोहा ॥

दश इन्द्री मन ग्यारवां, शुद्ध करे तत्काल।
व्रत एकादशी करतहैं, सरस भक्त कलिकाल ॥ १४२ ॥
होत शुद्ध उपवासतें, मन इन्द्री अरु प्रान।
या हित व्रत एकादशी, करैं सु संत सुजान ॥ १४३ ॥

* श्रीभगवतप्रसाद महिमा। चौपाई *

और वैष्णव को यों चाहिये * भोग लगे बिन कछून खइये ॥

(श्रीजोगजीतजी कृत लीलासागर ग्रन्थे)

॥ दोहा ॥

भोग प्रसादी पाइये, पुनि पुनि होय न मीच ॥ १४४ ॥

(भक्तिरसमंजरी ग्रन्थे)

हरिके भोग लगे बिना, खाय रसोई कोय ।
चरणदास यों कहत है, योनि काककी होय ॥ १४५ ॥
(भक्तिसागर ग्रन्थे.)

भोगलगे बिन खाय जो, वा संग जैवँत भूत
राम रूप निश्चय करो, हरि सों लगे न सूत ॥ १४६ ॥

भोग लगाकर भोजन खैये ❀ संध्या भोर आरती गइये ॥
(गुरुभक्तिप्रकाशे)

त्वयोपभुक्तस्रग्गंध वासोलंकारचर्चिताः ।
उच्छिष्टभोजिनोदासा स्तवमायां जये महि ॥ २१७ ॥
(श्रीमद्भागवत एकादशमस्कन्धे उद्धववाक्यं)

आपकी उपभुक्त माला, चंदन आदि वस्त्र, अलंकार धारण करने से और आपका प्रसाद भोजन करने से, हम दास आपकी माया को जीत लेते हैं ॥ २१७ ॥

॥ संग्रह करता, दोहा ॥

अन्याश्रय करनों नहीं, असमर्पित नहिं लेय ।
इन्द्रिन को उपभुक्त हरि, आस्वादन नित देय ॥ १४७ ॥

यज्ञाशिष्टामृतभुजो यांति ब्रह्मसनातनम् ॥ २१८ ॥
(श्रीमद्भगवद्गीता, ४ अध्याय ३१ श्लोके)

भगवत् के] अर्पण करने के बाद शेष अमृत रूप अन्न को जो भोजन करते हैं, वही सनातन ब्रह्म को प्राप्त होते हैं ॥ २१८ ॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहृत मश्नामि प्रयतात्मनः ॥ २१९ ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ९ अध्याय २६ श्लोके)

पत्र, पुष्प, फल, जल जो मेरे भक्ति से अर्पण करता है, उनको मैं भोजन करताहूं ॥ २१९ ॥

* श्रीमद्भागवतमाहिमा ॥ चौपाई *

महापुराण धर्म तुम गहियो * श्रीभागवत विचारत रहियो ॥
यही जु मत तुम नीके लीजो * मेरी आज्ञा में मन दीजो ॥

(लीलासागर ग्रन्थे)

॥ दोहा ॥

सम्प्रदाय शुकदेव मुनि, चरणदास गुरुद्वार ।
परमधर्म भागवत मत, भक्ति अनन्य विचार ॥ १४८ ॥
राधा कृष्ण उपास, धरम भागवत हमारो ।
निजवृन्दावन धाम, मुक्ति सामीप निहारो ॥ १४९ ॥
गंगा तीरथ जान, व्रत ग्यारस को धारो ।
क्षमा शील संतोष, दया नित हृदय विचारो ॥ १५० ॥
सम्प्रदाय शुकदेव मुनि, आचारज चरणदास ।
रामरूपतिन पदशरण, नवधा भक्ति निवास ॥ १५१ ॥

चार सम्प्रदाय के आचार्यों ने श्रीमद्भागवत को सर्वोत्कृष्ट माना है, और गौराङ्ग आदि आचार्यों ने अपनी २ सम्प्रदायों में नित्यपाठ में रक्खी है । श्रीवल्लभस्वामी ने परम रहस्य से पूर्ण सुबोधिनी नामक टीका श्रीमद्भागवतकी की है । जीवगोस्वामी ने वैष्णव-तोषणी टीका अपूर्व सरस की है । श्रीमद्भागवत की महिमा पुराणों में बहुत स्थलों पर की है । पद्मपुराण और

स्कन्धपुराण में तो महात्म्य की कई अध्याय हैं, यहां विस्तार भय से नहीं लिखते हैं ।

किं श्रुतैर्बहुभिःशास्त्रैः पुराणैश्चभ्रमावहैः ।
एकंभागवतंशास्त्रं मुक्तिदानेनगर्जति ॥ २२० ॥

(पद्मपुराणे)

बहुत से शास्त्र और भ्रम पैदा करने वाले पुराणों के सुनने से क्या है, जब एक भागवत शास्त्र ही मुक्तिदान के लिये गर्जना करता है ॥ २२० ॥

श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा नित्यंभागवतोद्भवम् ।
पठस्वस्वमुखेनैव यदिच्छसिपरांगतिम् ॥ २२१ ॥

(पद्मपुराणे)

आधा श्लोक वा एक पाद भी नित्य पाठ श्रीमद्भागवत का कर, यदि परा (उत्कृष्ट) गति की इच्छा है ॥ २२१ ॥

श्रीमद्भागवतंयत्र श्लोकंश्लोकार्द्धमेवच ।
तत्रापिभगवानकृष्णो वल्लवीभिर्विराजते ॥ २२२ ॥

जिस स्थलपर श्रीमद्भागवत का एक श्लोक वा आधा श्लोक भी उच्चारण होता है, वहां श्रीकृष्ण गोपी जनों के साथ विराजते हैं ॥ २२२ ॥

अनेकजन्मसंसिद्धः श्रीमद्भागवतंलभेत् ॥ २२३

(स्कन्धपुराणे)

अनेक जन्मों के साधन से जब सिद्ध होजाता है; तब प्राणी को श्रीमद्भागवत प्राप्त होती है ॥ २२३ ॥

श्रीमद्भागवतंतस्मा अपिनारायणो ददौ ।
सतुसंसेवनात्तस्य जिग्येचापितमोगुणम् ॥ २२४ ॥
कथा भागवतीतेन सेवितावर्षमात्रतः ।
लयेआत्यन्तिकेतेना वापशक्तिंसदाशिवः ॥ २२५ ॥

श्रीनारायण भगवान ने श्रीसदाशिव को श्रीमद्भागवत उपदेश की उस के सेवन करने से तमोगुण को जीतलिया। वर्ष भर में उसका पठन करने से जीवों को मोक्ष प्राप्त करने की शक्ति हुई ॥ २२४–२२५ ॥

श्रीमद्भागवत को बोपदेव कृत मानने वाले अबुद्ध हैं क्योंकि श्रीहनुमान, श्रीमध्वमुनी, श्रीशङ्कराचार्य जो बोपदेव के बहुत पहले हुए उन्होंने इसका वर्णन अपने ग्रन्थों में किया है। बहुत से वाममार्गी भगवती भागवत जो उन्ही लोगों की घड़ी हुई है उसको व्यास कृत मानते हैं, इस विषय का निर्णय "श्रीमद्भागवत विजयवाद" "श्रीमद्भागवत शङ्कानिरास" ग्रन्थों में अच्छी तरह किया है, कई पुराणों के तथा पूर्व आचार्यों के प्रमाण से पूर्ण रीती से भ्रान्ति निवारण करदी है, विस्तार भयसे यहां नहीं लिखागया है। श्रीमद्भागवत व्यासकृत होने का सब से बड़ा यह प्रमाण है कि गीताकी १८ अध्यायका ही श्रीमद्भागवत में १८ हजार श्लोकों से विस्तार पूर्वक वर्णन है, भागवत के पठन करने से निर्पक्ष पाठकों को स्पष्ट प्रतीत होता है कि मानो गीताकाही टीका व उदाहण सहित पठन कररहे है। श्रीशुकमुनि सरीखे परमहंस सिवाय ऐसी श्रवण मात्र से वैराग्य दिलाने वाली व भक्ति प्रेम पैदा करने वाली वाणी कौन दूसरा कथन कर सक्ता है।

(वैश्नवों के कर्तव्य)

१ गुरुनिष्ठ व आज्ञा वर्ती होना।
२ साधू सेवा व वैश्नव सेवा.
३ सम्प्रदाय सिद्धांत ज्ञान.
४ कण्ठी, तिलक मुद्रा निष्ठा.
५ परत्रिय, परधन, निषेध
६ हरि, गुरु, जन्म कर्म उत्सव करने की दृढ भक्ति.
७ जाती, विजाती, परीक्षा.
८ संसारी सङ्ग करना, विजाती सङ्ग परित्याग.
९ निजगुरु मंत्र में दृढ निष्ठा, अन्य मंत्र त्याग.
१० गुरुवाणी का नित्य पठन.
११ सद्शास्त्र, गीता, भागवत, आज्ञा वर्ती होना.
१२ विश्वासघात, मिथ्यावाद, परित्याग.
१३ अन्न, वस्त्र, यथाशक्ति दान.
१४ नित्यनेम किये बिना अन्न, जल, परित्याग.
१५ भगवत अनर्पित वस्तु भक्षण परित्याग.
१६ साधू, गुरुसेवा में मालिक प्रबन्ध.
१७ ब्रजवासीलोगों में ब्रजरज में दृढप्रीति.
१८ ब्रजवास की उत्कण्ठा.
१९ युगलनाम नित्य संकीर्त्तन.
२० परनिन्दा, परद्रोह, परित्याग.
२१ हरिगुरु भक्तन सों नीचा अनुसंधान.
२२ निरअभिमान रहना, आपेको प्रेम पूर्वक आदर देना।
२३ यथालाभ संतोष भगवत इच्छा में प्रसन्न चित्त.
२४ जक्त अनित्य हरिगुरु नित्य मानना.
२५ लौकिक अलौकिक काम के सिवाय वृथा बोलिना परित्याग.
२६ भंग, तमाखु, चडस, अफीम, मदिरादि दुर्व्यसन, परित्याग.
२७ हिंसा परित्याग.
२८ दया, क्षमा, शील, संतोष धारना.
२९ दुर्वचन, परित्याग.
३० दुराग्रह, परित्याग.
३१ तनमन वचन से परोपकार निष्ठा.
३२ कपट, छल, अभिमान त्याग.
३३ अपनानाम रूप वैश्नवों कासा रखना.
३४ जो गुरुने भाव दियाहोय उसही भावसे प्रकट पूजा तथा मानसी पूजा तत्पर रहना.
३५ मान, बडाई, परित्याग
३६ वैश्नवी दीक्षालेकर वैश्नव बनना.
३७ अनन्यता व्रत रखना.
३८ कथनी जैसी करनी.
३९ नामापराध त्याग.
४० सेवापराध त्याग.
४१ हरिचरणामृत का नियम
४२ श्रीइष्टदेव दर्शन का नियम.

* अथ नित्यसाकारमुक्ति वर्णन *

नैकात्मतांमेस्पृहयन्ति केचितमदीयसेवा भिरता-मदीहाः । येऽन्योन्यतोभागवताः प्रसज्यसभाज-यन्ते ममपौरुषाणि ॥ २२६ ॥ पश्यन्तितेमे रुचिरा-न्यम्बसंतः प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि । रूपाणीदि-व्याणिवरप्रदानि साकंवाचंस्पृहणीयांवदन्ति ॥ २२७

(श्रीमद्भागवत तृतीयस्कन्धे)

श्रीकपिलावतार का अपनी मातापति वचन है कि एकान्तिक भक्त जो मेरे सेवा परायण हैं वे मेरे अन्दर लीन होजाना इस तरह की मुक्ति को नहीं चाहते हैं, परस्पर मेरा गुणगान करना इसही को सर्व श्रेष्ठ मानते हैं, उनको मेरे परम मनोहर दिव्य स्वरूपों के दर्शन होय हैं, उन स्वरूपों के साथ परस्पर अमृत वचनवाले होय हैं, जिसकी योगी तपस्वी आदि केवल स्पृहा करते हैं, लेकिन उनको वो प्राप्त नहीं होती, केवल परम प्रेमी जनही अधिकारी हैं, जो ऐसे प्रेमी भक्त हैं उनकी तो लीला ही निराली है, दासादि रस में रहकर भगवत का माधुर्य तथा दिव्य लीला का सुख मोक्ष सुखसे भी अधिक होता है, उनको मोक्ष तुच्छ मालुम पड़ती है ॥ २२६-२२७ ॥

"तेषां मुक्तिरपिफल्गु" (श्रीमद्भागवते)

भगवत् के एकान्तिकभक्तों को मुक्ति तुच्छ है ।

पद—भक्तजन सो हरिके मनभावे ।

निष्कामी अरु प्रेम हिये में अनन्यभक्ति चित लावै ॥

आनदेव जो मोती वरषै तौ नहीं पतियावै।
प्रभुके चरणकमल के ऊपर भँवर भयो लिपटावै॥
सिद्धिन चाहै ऋद्धिन मांगै दर्शन को ललचावै।
मुक्ति आदि दे चाहन कोई आपा सकल गँवावै॥
रोमहि रोम पुलक सब देही गोविंद के गुण गावै।
गद गद बाणी कण्ठ उसासै नैनन नीर ढरावै॥
परमेश्वर मिलने की लहरैं इक आवै इक जावै।
कहैं शुकदेव चरणही दासा हरिहू कण्ठ लगावै॥ (भक्तिसागर)

जो अद्वैती महात्मा हुए हैं, उन्होंने भी नित्य मुक्त साकार दासों का ऐसा वर्णन किया है।

छन्द—विक्षेपक बहुन होय हरि सों निकट वर्तों नित्यही।
वहांसदा सनमुख रहैं आगे हाथ जोडे भृत्यही॥
पलएक कबहुन होय अन्तर टक टकी लागी रहे।
यह पराभक्ति प्रकाश परिचय शिष्यसुनि सद्गुरु कहैं॥
सेव्यको जायके दास ऐसे मिले, एकसोहोयपै एक है ना मिले।
आपनो भाव दासत्व छाडै नहीं, सा पराभक्ति है भाग्य पावै कहीं।
(श्रीदादूजी के शिष्य सुंदरदासजी की वाणी)

दोहा—औरो सोरो नोन गुड़, जलपाये जल होय।
परसा मोती नीरको, फेर नीर नहिं होय॥ १५२॥
(निम्बार्की परशुरामजी की बाणी)

दधि मथके घृत काढके, देत तक्र में डार।
सुन्दर बहुर मिले नहीं, ऐसे लेहु विचार॥ १५३॥ (सुन्दरदासजी)
ज्यों सूरज की धूपमें, दीपक मणि सु प्रकाश।
नित्यमुक्तजनजीवको, अद्भुतविलगविलास १५४ (सरसमाधुरी)

* अथ भगवत सेवापराध वर्णन *

१ भगवान में देवविशेष वा तत्वविशेष बुद्धि.
२ शास्त्रोंमें ग्रन्थ अर्थात् पौरुष में बुद्धि.
३ वैष्णव जाति बुद्धि.
४ गुरुमें साधारण मनुष्य बुद्धि.
५ प्रतिमामें शिला बुद्धि.
६ प्रसाद में खाद्य बुद्धि.
७ चरणोदक में जल बुद्धि.
८ तुलसी में वृक्षसाधारण बुद्धि.
९ गऊ में पशु साधारण बुद्धि.
१० भागवतऔरगीतामेंग्रंथसाधारणबुद्धि
११ भगवत् लीलामें मनुष्यकृत बुद्धि.
१२ संसारिकप्रेम वा स्त्री सुखमें लीला मान स्मर्ण
१३ श्रीगोपीजनमें परकीया भावना.
१४ रासलीला में काम बुद्धि.
१५ महोत्सव में स्पर्शास्पर्श बुद्धि.
१६ नास्तिकवादावलम्बन.
१७ संदेह पूर्वक धर्माचरण.
१८ अश्रद्धापूर्वक धर्माचरण. वा धर्म में आलस्य करना.
१९ वैष्णवका बाह्यचारित्र देखना.
२० महात्माओं के चरित्र पर गुण, दोष विचारणा.
२१ अपने को उत्तम समझना.
२२ किसी देवता या शास्त्रकी निन्दा करना.
२३ भगवतविग्रह के सामने पीठलगाकर बैठना.
२४ जूता पहिने.
२५ माला पहिने.
२६ छड़ी लिए.
२७ नील वस्त्र पहने.
रेशम में नील शुद्ध है.
२८ विना दन्तधावन किये.
२९ मलत्याग मैथुनादिक के पीछे विना वस्त्र बदले मंदिरमें जाना.
३० भगतवविग्रहकेसामनेहाथपैरहिलाना
३१ ताम्बूलादि खाना.
३२ जोर से हँसना.
३३ कुचेष्टा करना.
३४ स्त्रीको घूरना.
३५ क्रोध करना.
३६ दूसरेको आदरके हेतु अभिवादन करना.
३७ दुर्गंधवस्तु खाकर या पहनकर विना गंध दूरभये वा अजीर्णभयेपरजाना.
३८ मत्तहोना अर्थात् नशा करकेजाना.
३९ किसीका अपमान वा मारना.
४० काम क्रोधादि चेष्टा करना.
४१ घरआये मनुष्यकीविशेषकरके सन्त कि अभ्यर्थना न करना.
४२ सेवा वा धर्म वा पांडित्यअपनेमेंमानना वा सुकृतको अपनाकिया समझना.

४३ नास्तिकों का लम्पटों का हिंसकों का लोभियों का मिथ्याचारियोंका संग्रह करना.
४४ विपत्ति परमेश्वरने दिया यह बुद्धि करना.
४५ धर्मके बल पाप करना.
४६ किसी को तृणमात्रभी कष्ट देकर अपनेको धार्मिक समझना.
४७ स्त्री, पुत्र भृत्य, परिवार आश्रित दीन संत की उपेक्षा.
४८ वस्तुको अपने उपयोगी समझ कर सेवा में देना या असमर्पित वस्तु ग्रहण करना.
४९ इष्टदेवकी शपथ खाना.
५० भगवतधर्म वा नाम बेचकर द्रव्य कमाना.
५१ अन्य देवतासे आसा करना.
५२ धर्मशास्त्रकी मर्यादा का उल्लङ्घन.
५३ वह दशा हुये विना ज्ञान हांकना. वा वैसा आचरण करना.
५४ देवचरित्रकी भांति आचरण करना.
५५ संप्रदायभेदसे वैष्णवोंको ऊंचानीचा समझना
५६ अवतार की तारतम्य दृष्टी से निंदा करना.
५७ हँसीमें भी किसीको तुम परमेश्वर हो यह कहना.
५८ परमेश्वर को कदापि किसी कारण सेभी अणुमात्र भी परतंत्र समझना.
५९ लोभसे भी किसीको चरणामृत प्रसाद देना.
६० चित्र, मूर्ति, नाम आदि की अवज्ञा करना या कहना.
६१ किसी जीव को किसी प्रकार भी ताप देना वा उद्वेजन करना तर्क वितर्क करके आस्तिकता से मन डिगाना.
६२ भगवतावतारमें जन्म कर्म मानना.
६३ जुगल स्वरूपमें भेद बुद्धि.

—*—

* नामापराध *

१ श्रीगुरुमें नरबुद्धि करना.
२ प्रभूमूर्ति में पाषाण बुद्धि.
३ प्रसादको साधारण अन्न मानना.
४ चरणामृतको साधारणजलसमझना.
५ निन्दा करना.
६ शिवादिक की न्यून बुद्धि करके निन्दा करना.
७ नामके बल पाप करना.
८ मंत्रको साधारण नाम समझना.
९ प्रभूके समान और किसीको मानना.
१० श्रद्धाविहीनको नाम सुनाना.

* अथ वर्षोत्सवों का सूचीपत्र *

माघ सुदी वसन्त पंचमी (वसंतोत्सव) प्रातःकाल ६ बजे के समय ।
फागण सुदी ११ से पूर्णिमातक (होलीउत्सव) राजभोगके बाद वा उत्थापनके समय।
चैत्र वदी १ फूलडोल उत्सव दुपहर बाद।
" सुदी १ शुकतार पर श्री शुकमुनि का डेढपहर दिनबाकी रहे पर, (श्रीस्वामी चरणदासजी को दीक्षा देना)
" " ६ श्री जमुनाजन्मोत्सव (प्रातःकाल) ।
" " ९ श्री रामजन्मोत्सव (मध्यान्ह) ।
बैशाख वदि ऽऽ श्री शुकमुनिजन्म (डेढपहर दिनचढे) ।
" सुदी ३ अक्षय तृतिया चन्दनश्रृङ्गार (प्रातःकाल) ।
" " ७ श्री गंगाजन्म (प्रातःकाल) ।
जेष्ठ वदी १२ श्री स्वामीरामरूपजी का धामयात्रोत्सव (प्रातःकाल) ।
जेष्ठ में महिनेभर, जलयात्रा व शीतल भोग उत्सव (पूर्णमासी को तो निश्चयही करना चाहिये)
असाढ सुदी १५ श्री व्यास गुरुपूजा जन्मोत्सव (प्रातःकाल) ।
श्रावण " ३ से पूर्णिमा तक झूलनउत्सव (सायङ्काल) ।
" " ११ भगवत के पवित्राधारण करना ।
" " १५ रक्षाबंधन उत्सव ।
भाद्रपद वदि ८ श्री कृष्णजन्ममहोत्सव जन्मसमय (अर्धरात्रि) ।
" सुदी ३ श्री स्वामी चरणदासजी का जन्ममहोत्सव (डेढपहरदिनचढे) ।
" " ८ श्री राधाजन्मोत्सव (अरुणोदयकाल)
" " ११ जलझूलन व दानएकादशी (सायंकाल) ।
आश्विन सु. १५ डहरे में श्री चरणदास को श्रीशुकमुनि डेढ पहर दिन चढे दर्शन और रासोत्सव (रात्रिमें) श्री रामसखी की धामयात्रा (रातमें)
कार्तिक वु १४ रूपचतुर्दशी श्री ठाकुरका अभ्यङ्ग, मंजन, स्नान ।
" सु. १ श्री गोवर्धनपूजा और अन्नकूट उत्सव (मध्यान्ह) ।
" " ११ प्रबोधनी एकादशी जागरण, चार भोग व आरती (रात्रि में) ।
मार्गशिर वु. ७ श्री स्वामी चरणदासकी धामयात्रा (मध्यान्ह) ।
" सुदी १२ व्यञ्जनद्वादशी नानाप्रकार के भोग लगाना (मध्यान्ह) ।
पोष———महिने भर खिचड़ी भोग)

* तृधाआनन्द *

(१) विषयानन्द, (२) ब्रह्मानन्द, (३) प्रेमानन्द ।

विषयानन्द सुख अत्यन्त ही तुच्छ और क्षणिक है ।

येहिसंस्पर्शजाभोगा दुःखयोनयएवते ।
आद्यन्तवंतः कौन्तेय नतेषुरमतेबुधः ॥ २२८ ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ५ अध्याय २२ श्लोके)

जो विषयों के सुख हैं वे दुःखके खज़ाने हैं और क्षणिक हैं (आज हैं और कल नहीं) इसी लिये हे अर्जुन! जो ज्ञानी जन हैं वे उनमें नहीं रमते हैं, ब्रह्मानन्द जो ब्रह्मरूप होने से प्राप्त होता है ॥ २२८ ॥

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्श मत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ २२९ ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ६ अध्याय २८ श्लोके)

इस तरह से मेरे अन्दर चित्त योजन करने से योगी का जब पाप धुप जाता है तो वो ब्रह्माकार रूप अत्यन्त सुखको भोगता है । प्रेमानंद सुख वो है जो भगवान् के एकान्तिक भक्तों को प्राप्त होता है, जो दासादि भाव करके भगवत की सेवा परायण होकर परम धाम में परात्पर भगवत् माधुर्यादि लीलाओं का सर्वोत्कृष्ट परमानन्द अनुभव होता है, उनको ब्रह्मानन्द सुख भी न्यून मालुम होता है ॥ २२९ ॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽह ममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥ २३०

(श्रीमद्भगवद्गीता १४ अध्याय २७ श्लोके)

हे अर्जुन ! ब्रह्मकी प्रतिष्ठा मैं हूं, अव्यय अमृत (मोक्ष) कि प्रतिष्ठा मैं हूं, यहां सनातन धर्म की प्रतिष्ठा मैं हूं और एकान्तिक भक्तों के सुखकी प्रतिष्ठा मैं हूं, यहां श्री भगवान् ने मोक्ष (ब्रह्मसुख) और एकान्तिक भक्तों के सुख को अलग अलग दिखलाया है ॥ २३० ॥

मुक्तानामपिसिद्धानां नारायणपरायणः ।
सुदुर्लभःप्रशान्तात्मा कोटिष्वपिमहामुने ॥ २३१ ॥

जो मुक्त (ब्रह्मरुपको प्राप्त) सिद्ध हैं, उनमें भी प्रशान्त भगवत् भक्त होना कोटों में भी अत्यन्त दुर्लभ है, यहां जीवन मुक्तों वो एकान्तिकभक्तों के सुख को पृथक २ बतलाया है २३१

आत्मारामाश्चमुनयो निर्ग्रन्थाअप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहेतुकींभक्ति मित्थंभूतगुणोहरिः ॥ २३२ ॥

आत्मारामसुनि भी जिनकी हृदयकी ग्रन्थी खुलगई है अर्थात् जो ब्रह्म सुख को प्राप्त हो गये हैं, वे भी भगवान् की अहैतुकी भक्ति करते है, अर्थात् उनके भक्ति करने में कोई मोक्षादि को हेतु नहीं है, क्यों कि वे पहलेही से जविनमुक्त हैं, हरिके माधुर्यादिगुण ऐसे ही हैं ॥ २३२ ॥

या निर्वृतिस्तनुभृतां तवपादपद्मयोः ।
सा ब्रह्मणिस्वमहिमन्यपिनीथमाभूत् ॥ २३३ ॥
(श्रीमद्भागवते)

जो सुख आपके चरणारविन्दों मैं प्राप्त होता है वो सुख अपनी महिमा से पूर्ण ब्रह्म में भी नहीं है ॥ २३३ ॥

श्रीस्वामीचरणदास के शिष्य जोगजीत जिन्होंने योगसमाधि

की हालत शीघ्रही प्राप्त करली, इसही कारण (जोगजीत) श्रीमहाराज ने उनका नाम रक्खा है, उनकों जब एक समय श्रीस्वामी परम कृपा करके नित्यधाम अमरलोक के दर्शन कराये तो उन्हों ने यह कहा कि–

चौथो सुख परमानंद भारो * यह सुख ताहूते अधिकारो ॥
अर्थात् तुरीय पदके सुखसे भी भगवद धामको सुख अधिक तर है।

आनन्दाद्विविधाप्रोक्ता मूर्त्तश्चामूर्त्तएवच ।
अमूर्त्तस्याश्रयोमूर्त्तः परमात्मानराकृति ॥ २३४ ॥
(नारदपंचरात्रे)

आनन्द दो प्रकार का है, एक मूर्त्तिमान, दूसरा अमूर्त्तिमान, ब्रह्म अमूर्त्तिमान्, आनंद से मूर्त्तिमान नराकार परमात्मा का आनन्द श्रेष्ठ है, क्योंकि अमूर्त्तिमान् का आश्रय है ॥ २३४ ॥

ब्रह्मानन्दरसादनन्त गुणतोरम्योरसोवैष्णव
तस्मात्कोटिगुणोज्ज्वलश्चमधुरःश्रीगोकुलेन्द्रोरसः
तच्चानंदचमत्कृतिप्रतिमहवर्षारसानांपरम्
श्रीराधापदपद्ममेवपरमं सर्वस्वभूतं मम ॥ २३५ ॥
(आगमपुराणे)

ब्रह्मानन्द से अनन्तगुणारस विष्णुभगवान का है, उससे भी कोटिगुणारस श्रीगोकुलेन्द्र श्रीकृष्ण का है, उससे भी अनन्त गुणारस की वर्षा जिन में होय है, ऐसे श्री राधिका के चरणार्विन्द मेरे सर्वस्वभूत हैं ॥ २३५ ॥

राजन्पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां
दैवः प्रियः कुलपतिः क्वचकिंकरोवः ॥

अस्तेवमङ्गभजतां भगवान्मुकुन्दो
मुक्तिंददातिकर्हिचित्स्मनभक्तियोगम् २३६

हे राजन्! अनेक प्रकारके दुःख रूप दावाग्निसे पीड़ित हुवे और दुस्तर संसार समुद्रको तरने की इच्छा करने वाले पुरुषकों पुरुषोत्तम भगवान की लीला रूप कथामृत के रसको सेवन करे बिना दूसरा तरने का उपाय है ही नहीं, इस कारण वह यथाशक्ति भगवत् कथाओं का ही श्रवण करे ॥ २३६ ॥

* पद्मपुराणांतर्गत श्रीकृष्णभगवान, श्रीशिवसंबाद *

श्रीभगवानुवाच ।

त्वंचरुद्रमहाबाहो मोहशास्त्राणिकारय ।
अतथ्यानिवितथ्यानि दर्शयस्वमहाभुज ॥ २३७ ॥
प्रकाशं कुरुचात्मान मप्रकाशंचमांकुरु ।
मांचगोपययेनस्यात् सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा ॥ २३८ ॥

ऐसे भगवान् की आज्ञा हुई कि जीव को मोह उत्पन्न होवे, ऐसे शास्त्र उत्पन्न करने चाहियें, ऐसी फलस्तुति करनी चाहिये कि कुछ सत्य फल होवे, जब जीव की प्रवृत्ति होय, तुम्हारी पूजा को बढावो, हमारी पूजा को गुप्त करो, तब श्रृष्टि बढेगी (किंचः)

निम्नगानांयथागङ्गा देवानांमच्युतोयथा ।
वैष्णवानांयथाशंभुः पुराणानामिदंतथा ॥ २३९ ॥

एक समय कैलाश शिखर पर सिद्ध वट के नीचे रत्न के के चौतरे पर व्याघ्रचर्म के आसन पर, शिवजी बैठे हरि ध्यान कर रहे, उस समय भगवान् ने आज्ञा करी, क्योंकि शिव मुख्य भक्त हैं, मर्यादा मय है ॥ २३९ ॥

त्वंचरुद्रमहाबाहो मोहनार्थसुरद्विषाम् ।
पाषण्डाचरणंधर्मं कुरुष्वसुरसत्तमा ॥ २४० ॥
तामसानिपुराणानि कथयष्वचतान्प्रति ।
मोहनानिचशास्त्राणि कुरुस्वचमहामते ॥ २४१ ॥
मयिभक्ताश्चयेविप्रा भविष्यन्तिमहर्षयः ।
त्वच्छक्त्यातान्समाविश्यकथयस्वचतामसान् २४२
कणादंगौतमंशक्ति मुपमन्युं च जैमिनिं ।
कपिलंचैवदुर्वासं मृकण्डंचवृहस्पतिं ॥ २४३ ॥
भार्गवंजमदग्निंचदशैतांस्तामसानृषीन् ।
तवशक्तिःसमाविश्य कुरुतेजगतोहितं ॥ २४४ ॥
त्वच्छक्त्याभिनिविष्टास्तेतमसोद्रिक्तयाभृशं ।
तामसास्तेभविष्यन्ति त्त्णादेवनसंशयः ॥ १४५ ॥
कथयन्तेचतेविप्रा स्तामसानिजगत्त्रये ।
त्वमेवलोकेतान्लोकानमोहयस्वजगत्त्रये ॥ २४६ ॥
तथापाशुपतंशास्त्रं त्वमेवकुरुसत्तम ।
कङ्कालशैवपाषण्ड महाशैवादिभेदतः ॥ २४७ ॥
अवलक्ष्यमिदंसम्यक् वेदवाह्यांद्विजाधमाः ।
भस्मास्थिधारिणःसर्वेभविष्यन्तिनसंशय ॥ २४८ ॥
त्वांपरत्वेनवक्ष्यंति सर्वेशास्त्रेषुतामसाः ।
तेषांमतमधिष्ठाय सर्वेदैत्या महावलाः ॥ २४९ ॥

भविष्यंतिमद्दिमुखाःअहमप्यवतारेषुत्वांचरुद्रमहाबल
तमोवतांविमोहाय पूजयामि युगे युगे ॥ २५० ॥

* राजस, तामस, सात्विक पुराण वर्णन *

मत्स्यं कूर्मं तथा लिङ्गं शैवंस्कांदन्तथैवच ।
आग्नेयचषडेतानि तामसानि निबोधमे ॥ २५१ ॥

मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द, अग्नि, ६ पुराण तामस कहेगये हैं

ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयंतथैवच ।
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोधमे ॥ २५२ ॥

ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन, ब्रह्म यह छः पुराण राजस कहे गये हैं ॥ २५२ ॥

वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतंशुभम् ।
गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने ।
षडेतानिपुराणानि सात्विकानिमतानिमे ॥ २५३ ॥

विष्णु पुराण, नारद पुराण, श्रीमद्भागवत पुराण, गरुड़ पुराण, पद्मपुराण, वाराह पुराण, यह छः पुराण सात्विक (सतोगुणमयी) कहे गये हैं ॥ २५३ ॥

सात्विकामोक्षदाः प्रोक्ताः राजसास्वर्गदाशुभाः ।
तथैवतामसादेवि निरयप्राप्ति हेतवे ।
तथैवस्मृतयःशक्ति ऋषिभिस्त्रिगुणात्मिकाः २५४

'सतोगुणी' पुराण मोक्ष देने वाले अर्थात् श्रीभगवत् प्राप्ति कराने वाले हैं। और 'रजोगुणी' पुराण स्वर्ग देने वाले हैं। और 'तमोगुणी' पुराण नरकप्राप्ति कराने वाले कहे गये हैं। ऐसे ही स्मृति भी तीनों गुणमयी कही गई हैं ॥ २५४ ॥

प्रथम लिखे हुवे श्लोकों में श्रीकृष्ण भगवान ने श्रीमहादेवजी को मोह उत्पादक पाखण्ड धर्म मयी शास्त्र रचनें की आज्ञाकरी, उन श्लोकों का भावार्थ भाषा में वर्णन किया जाता है। श्रीभगवान् वचन—हे रुद्र ! महाबाहु सुरद्वेषी जो दैत्य तिनके निमित्त पाषण्डों का आचरण जिसमें ऐसा जो धर्म तुम सुरोत्तम हो सो प्रगट करो। कणाद, गौतम, शक्ति, उपमन्यु, जैमिन, कपिल, दुर्वासा, मृकंड, बृहस्पति, भार्गव, जमदग्नि, पाशुपति-शास्त्र तुम करो। कंकाल, शैव, पाषंड, महाशैव, इत्यादि भेद-युक्त इनको जो देखें सुनेंगे वो वेदवाह्य द्विजाधम होवेंगे। भस्म रुद्राक्षादि को धारण करेंगे, तुमको परब्रह्म मानेंगे, तामस हो के मो से विमुख होंगे और हमभी अवतार लेके तुम्हारी पूजा करेंगे, वर मांगेंगे, इस तरह पर देखके मोह युक्त होजावेंगे। इस तरह पर शिवजी को भगवान् ने आज्ञादी। जब शिवजी ने मन में विचार किया कि मैं तो भगवद्भक्त हूं, किसी को संदेह होगा, शिव भगवत भक्त नहीं हैं, इसलिये मैं विष्णु चरणोंद की गंगाजी को सदा मस्तक पर धारण करताहूं। तात्पर्य यह है कि शिवजी को वहिर्मुख शास्त्र रचनें की भगवानकी आज्ञा हुई, इसवास्ते वहिर्मुख शास्त्र रचनें का दोष लगा नहीं, शिव विशेष है, शिव पूजा विशेषण है, सो, पूजाकूं दोष लगा, इसही अभिप्राय से शिव पूजा निरमाल्य कहलाई, शिव पर जो वस्तु चढै सो निर्माल्य कही गई, इसही तरह शिवरात्रि भी श्रापित है, इस कारण से शिवरात्रि व्रत वैष्णव को नहीं करना चाहिये ॥

भवव्रतधरायेच येचतान्समनुव्रता।
पाषंडिनः संतुतेवै सच्छास्त्रपरिपंथिनः ॥

भव जो महादेव जिन्हों का व्रतकरे और कपोलकल्पित ऐसी
प्रशंसा करे, कि एकादशी व्रत का फल एक शिवरात्रि के व्रत
करने से होजाता है । इस बातको मानकर शिवरात्रि व्रत करे
तो वो पाखण्डी हो जाता है, तथा श्रीगीता व भागवत जो
मुख्य वैष्णव धर्म के शास्त्र हैं, इन्हों का द्वेषी होता है । इच्छा
करके शिवालय में जावे भी नहीं, सहज में श्रीशिवजी के
दर्शन हो जावें तो हाथ जोड़ के जै श्री बिहारीजी की प्रेमपूर्वक
कर लेना चाहिये, क्योंकि शिवजी बडे भक्त हैं ॥

॥ दोहा ॥

सदा शम्भु व्रज में रहे, करि गोपी को रूप ।
मूरति तो परगट भई, आप रहत हैं गूप ॥ १५२ ॥
(व्रजचरित्र ग्रन्थे श्रीमहाराज वाक्य)

* पंचपूजा वर्णन *

पंचपूजा पंचदेव मिश्रित वैष्णव को कर्तव्य नहीं है, क्यों कि
विष्णु, शिव, सूर्य, देवी, गणेश इन्हों में शिव तो बाहिर्मुख्य
को उपदेश करें, इस वास्ते नहीं पूजने चाहिये। और सूर्य तो काला-
धीन है, शिशुमार चक्राधीन है, कालाधीन भययुक्त का पूजन क्या
करना । और देवी भगवत् प्राप्ति विषे प्रतिबंधका है । प्रमाण—

दैवीह्येषागुणमयी मममायादुरत्यया ।
मामेवयेप्रपद्यन्ते मायामेतांतरन्तिते ॥
(श्रीमद्भगवद्गीता ७ अध्याय १४ श्लोके)

माया को तरेंगे सो मुझ को पावेंगे, देवी माया एकही है, इसके
पूजन की कोई आवस्यक्ता नहीं है । गणेश जो है सो पार्वती

के अङ्गके मेलसे उत्पन्न है और पार्वती भी मृत्युरूपा है । प्रमाण-
"मृत्युश्चरतिमद्भयात् "मृत्युर्धावतिपञ्चम" ॥
इस तरह पार्वती भी भय संयुक्त है और इनके अङ्गके मैल सें गणेशकी उत्पति है, सो इनके पूजने से कोई प्रयोजन नहीं।

दोहा-भागवत दशमस्कन्ध में, भृगुकीनों निर्धार।
तिरदेवा में विष्णुही, पूजन योग्य विचार ॥ १५३ ॥

भावार्थ-यह कि तृदेवों में भी केवल श्रीविष्णुही एक पूजने के योग्य सिद्धकिये जाचुके हैं । फिर पंचदेवमई पूजा करनें का प्रयोजन नहीं रक्खागया है । इसही को अनन्य धर्म वैष्णव पुरुषों ने माना है, और धारण किया है ।

येतुसर्वाणिकर्माणि मयिसंन्यस्यमत्पराः ।
अनन्येनैवयोगेन मांध्यायन्तउपासते ॥ २५५ ॥
तेषामहंसमुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामिनचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ २५६ ॥
(श्रीमद्भगवद्गीता १२ अध्याय ६ वें ७ श्लोके)

हे पार्थ! जो कोई सर्वकर्मों को मेरे में अर्पण करके मेरे ही शरण में आकर भक्ति योग युक्त मुझको ध्यावते और पूजते हैं, उन आये हुये शरणागत भक्तों को मैं थोड़ेही काल में मृत्यु दुःख रूप संसार सागर से उद्धार करनेवाला होताहूं ॥ २५५-२५६ ॥

अनन्याश्चिंतयंतोमां येजनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ २५७
(श्रीमद्भगवद्गीता ९ अध्याय २२ श्लोके)

हे अर्जुन ! जो मेरे भक्त अन्यंन्यभाव (मेरे विना अन्य किसी विषय में आसक्त न हो कर) से निरन्तर मेराही चिन्तवन करते हुये मेरी ही सेवा करते हैं उन नित्य मेरे परायण व मेरी निष्ठा में रहने वाले लोगों का योग क्षेम (अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति और प्राप्त वस्तु की रक्षा) मैं ही भली भांति करताहूं ॥ २५७

यांतिदेवव्रतादेवान् पितॄन्यांति पितृव्रताः ।
भूतानियांतिभूतेज्या यांतिमद्याजिनोऽपिमाम् २५८

(श्रीमद्भगवद्गीता ९ अध्याय २५ श्लोके)

जो इन्द्रादि देवों को भक्ति पूर्वक आराधते हैं वो उनहीं को प्राप्त होते हैं और पित्रेश्वरो की उपासना करनेवाले पित्रलोक जाते हैं, और जो पुरुष मेरा भजन पूजन भेद बुद्धि व अभेद बुद्धि से (सगुण निर्गुण) युक्त हो कर करते हैं वह मेरे परम धाम को पाते हैं ॥ २५८ ॥

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्यतु कौन्तेय पुनर्जन्मः न विद्यते ॥ २५९ ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ८ अध्याय १६ श्लोके)

हे अर्जुन ! ब्रह्मलोकआदि जितने लोक हैं उन सभी में जाने से पूर्व कृत पुण्य क्षय होने पर छूट जाते हैं और वहां के वासियों को और जन्म लेना पड़ता है और हे कुन्तीपुत्र ! जिन पुरुषों ने मुझे प्राप्त किया है वह फिर जन्म नहीं धारण करते हैं ॥ २५९ ॥

* उर्धलिखितअनुसार श्रीश्यामचरणदासाचार्य्य *

॥ कवित्त ॥

भूतन को सेवे जो भूतन में जाय मिले, जादू को सेवेतो चमार

ताकी माई सों । देवता सेवे सो देवलोक वास लहै, औषधि को सेये से मिला परावराई सों ॥ कीमीयां सेवे सो खराब होय दुनियां में, ऐसें धन खोवे अरु सुनावे नहीं भाइ सों । कहै चरणदास हम इतनोंको मांने नांहि, देख सभी छाडदिये मनलागो कन्हाई सों ॥ १ ॥ ध्यावे भर्म देवनको भीतनके लेवन को कोई संगसाथी नांहि भीरपरे तेरा है । परसंता है चंडकी भूत अरु शीतलाको भजे क्योंन कृष्णनाम कटे जम वेड़ा है ॥ भैरों अरु वराही पाखंड पूजा सभीकरे लगीहै वहीर कीन्हुं नैंनन न हेरा है । चरनदास कूरसव संतनको चेरो कहै ऐसा जगअंधा जानकर मननें घेरा है ।

॥ अरिल्ल छन्द ॥

सात पांच की सेव तजो लगी एकसें, साधुनकी करसेव मुड़ोमत भेषसें । भेषही मांहि अलेख यही तुमजानियों, चरनदासकी सीख सत्य कर मानियों ॥ २ ॥

॥ कवित्त ॥

कईकोटि दुर्गाजहां हाथ जोड़े रहैं कई कोटि शम्भू जहां ध्यानलावें । कईकोटि ब्रह्माजहां खड़े अस्तुति करें शेषनारद नहीं पारपावे ॥ वेदयशही कहै भेदकुछ नांल हैं पंथकीवात वेभी वतावें । चरनही दासकी आशजहां नितरहै कोटीतेतीस तहां शीशनांवें ॥ ४ ॥

(भंग तथा तमाखू और धतूरा आदिक अभक्ष नशेकी वस्तुओं की उत्पति और वैष्णवों को उन्होका सेवन करना अर्थात् खांनपान करना अनुचित सदशास्त्रों ने कहा है जिसका पूर्णरिति सें वर्णन किया जाता है)

अशोकमरविंदं च चूतं च नवमल्लिका।
शिरीषपुष्पपंचैव पंचवाणस्य सायका ॥ २६० ॥

अशोक, अरविंद, मल्ली, आम्र, सिरीसके पुष्प, इन पांचों पुष्पों का कामदेव वाण धारण किए रहता है। एक समय कामदेवने अपने धनुष में पञ्चवाण लगाकर पार्वतीजी पर चला कर कामोद्दीपन कर दिया, पार्वती ने काम से पीड़ित हो कर शिवजी को भोगार्थ समाधि से जगाने लगी, जब शिवजी नहीं जागे, तब उन्हों के गले में से सर्प उतारने लगगई, कि मेरे हाथ के स्पर्श होने से शिवजी समाधि से जाग जावेंगे परन्तु शिवजी नहीं जागे, तब पार्वती ने क्रोध कर सर्पकी आंख काढ कर पृथ्वी पर डालदी जिससे भंगके वृक्ष उत्पन्न होगये। सर्पके मुखसे कांटे काढ पृथ्वी पर डाले, जिससे धतूरे के वृक्ष उत्पन्न हुवे। सर्प के मुख के फन (झाग गिरे) जिससे तमाखू के वृक्ष उत्पन्न हुवे और सर्ववृक्षों के फूल तथा फल लगे। कामातुरता से पार्वती ने क्रिया करी जिससे इन वृक्षों को सकामता प्राप्त हुई, जब इन वृक्षों के पवन लगके शिवजी की नासिका में इन वृक्षोंकी गंधगई, शिवजी पार्वतीजी को कामातुर जान छे महीने परियंत भोग किया, और फिर कामदेवकी कुचाल जान शिवजीने कामदेवको तात्काल भस्म कर दिया, तब से काम का नाम अनंग प्रगट हुवा। श्रीमत् कृष्णावतार में प्रद्युम्न रूपसे प्रगट हुवा, जिसकी कथा दशमस्कन्ध भागवत में है ॥ २६० ॥

* श्रीब्रह्माजी व भृगुआदिऋषि सम्बाद वर्णन *

ब्रह्मोवाच ।

षष्टिवर्षसहश्राणि मयातप्तंतपःपुरा ।
नन्दगोपब्रजंस्त्रीणां पादरेणुपलब्धये ।
तथापिनमयांप्राप्ता सोवैपादरेणवः ॥ २६१ ॥

ब्रह्माजी कहने लगे कि हे भृगु आदिक ऋषीयो ! साठहजार वर्ष पर्यन्त मैंने पहले तपस्या नन्दगोप ब्रजस्त्री जो गोपीजन जिनकी चरणाविंद रेणु (रज) के प्राप्त के वास्ते करी तब भी गोपीजनों के चरणकी रज मुजको प्राप्त नहीं हुई । २६१

श्रुत्वैतद्ब्रह्मणोवाक्यं भृगुप्रहाय्यसादरां ॥ २६२ ॥

ऐसे ब्रह्मा के बचन सुनके आदर सहित भृगुजी पूछने लगे

बैष्णवानां पादरजो गृह्यतेत्वाद्विधैरपि ।
संतितेवहवो लोके बैष्णवाःनारदादयः ॥ २६३ ॥
तेषांविहायगोपीनां पादरेणुस्त्वयांयियत् ।
बर्ततेसंशयोमेत्र कोहेतुस्तद्वदप्रभोः ॥ २६४ ॥

गोपीजन के चरण रेणु की इच्छा इसवास्ते करी है, कि गोपीजन बैष्णव हैं, तो नारदादिक बैष्णव हैं, उन्हों की चरण रेणु क्यों नहीं लेनेकी इच्छाकरी, नारदादि लोकन में विचरें है, उन्हों की पादरेणु सुगम है । सो उन्हों की पादरेणु छोड गोपीजन के चरणों की रेणु में विशेषता क्या है, हे प्रभो ! यह संशय है, जिसको हेतु अर्थात् कारण क्या है सो कहिये । २३४

ततोब्रह्मा भृगुंप्राह चिंतयित्वा पुरातन।
कथांसर्व श्रुतीनांच रहस्येपरमाद्भुतं ॥ २६५ ॥

सर्वश्रुतीन को रहस्य परमअद्भुत ऐसी पुरातनी जो कथा जिसको चिंतन कर भृगु सें ब्रह्माजी कहने लगे ॥ २६५ ॥

नस्त्रियो ब्रजसुंदर्यः पुत्रताः श्रुतयः किल।
नाहंशिवश्चशेषश्च श्रीश्चताभिः समावचचित् २६६

भृगुपुत्रके समाधानार्थ तथा संबोधनार्थ ब्रह्माजी अपनो रहस्य कहनें लगे कि ब्रज सुंदरी हैं सो साधारण स्त्री नहीं किंतु वेदकी ऋचा हैं। इनकी भक्ति के समान ब्रह्माजी कहनें लगे कि मेरी तथा शिवकी, शेषकी, लक्ष्मीकी, ऐसी भक्ति नहीं, मुझ ब्रह्मा को तथा शिवको गंगाद्वारा चरण सेवन भक्ति है, शेषको नाम संकीर्तन द्वारा कीर्तन भक्ति है। लक्ष्मीको वनमालार्पण द्वारा अर्चनभक्ति सो मर्याद भक्ति प्राप्त हुई है। और गोपीजन को पुष्टिमारगीय आत्मनिवेदन भक्ति अर्थात् नवमी भक्ति प्राप्त होचुकी, इसमें सबसे अधिक गोपीजन मांनी गई हैं (प्रश्न) गोपीजनों का प्राकट्यकब हुआ और पूर्णपुरुषोत्तमकी कृपा और प्राप्ति कब हुई और कब वरदान हुवा सो कहते हैं ॥ २६६ ॥

प्राकृतेप्रलयेप्राप्तेऽव्यक्ते व्यक्तंगतेपुरा।
शिष्टेब्रह्मणिचिन्मात्रे कालमायातिगेत्तरे ॥ २६७

प्रलय ४ प्रकारका हैं।

नित्यनिमित्तिकश्चैव तथा प्राकृतिलयः।
आत्यंतिकश्चकथितः कालस्य गतिरीदृशी ॥ २६८

प्राकृत प्रलय में ब्रह्माका लय सो प्रलय आयाव्यक्त जो जगत सो अव्यक्त जो अक्षर जो ब्रह्म जिस में सब लय हुवा, जब अव्यक्त जो जगत अर्थात् अतिल १, वितल २, सुतल ३, तलातल ४, महातल ५, रसातल ६, पाताल ७, भूलोक ८, भुवलोक ९, सुवलोक १०, महलोक ११, जनलोक १२, तपलोक १३, सत्यलोक १४। ए चोदह लोक तथा जल–प्रथ्वी–तेज–वायु–आकाश–अहंकार–महतत्व, ए सात तत्व सब अक्षर में लीन हुवे तब अक्षरही चिन्मात्रे में काल तथा मायाकी गम्य नहीं।

ब्रह्मानन्द मयोलोको व्यापिवैकुण्ठ संज्ञिकः।
निर्गुणानाद्यनंतश्च वर्तते केवलेऽक्षरे॥ २६९॥

जिस अक्षर मे व्यापि वैकूण्ठलोक है सो लोकब्रह्मानंद मय है निर्गुण है, जिसके आदि और अन्त नहीं हैं ऐसा लोक अक्षर में स्थित है जिसका अमरलोक–अमरपुरी, निजलोक–चौथापद, निर्वाणपद–निजधाम, बेगमपुर–आदिक। श्रीश्यामचरणदासाचार्य्य महाराजने अमरलोक अखंड धामनाम पुस्तक में सविस्तार सर्व वेद उपनिषदों का तत्वसार सिद्धान्त रहस्य वर्णनकिया है।

अक्षरं ब्रह्मपरमं वेदानांस्थान मुत्तमं।
स्तल्लोकवासिभिस्तत्र स्तुतो वेदैः परात्परः॥ २७०

जिस अक्षरमें वेदकी भी स्थिति है सो वेदस्तुति करते हैं जो कि व्यापिवैकुण्ठ में निवास करते हैं उन्हों की॥ २७०॥

चरंश्रुत्वा ततस्तुष्टः परोक्तंप्राहतान्गिरा।
स्तुष्टोस्मिब्रूतमोःप्राज्ञ बरंयन्मनसीप्सितं॥ २७१॥

बहुतकाल स्तुति सुनके प्रसन्न होके बाणी करके परोक्षवाले कि, हे प्राज्ञ! हम तुमपर प्रसन्न हैं, तुमको जो अभीष्ट होवे अर्थात् इच्छा होवे सो कहना चाहिये ॥ २७१ ॥

नारायणादिरूपाणि ज्ञातान्यस्माभिरच्युत ।
सगुणांब्रह्मसर्वेषु वस्तुबुद्धिर्नतेषुनः ॥ २७२ ॥
ब्रह्मेतिपठ्यतेस्माभिर्यद्रूपंनिर्गुणंपरं ।
वाङ्मनोगोचरातीतं ततोनज्ञायतेतुतत् ॥ २७३ ॥
आनन्दमात्रमितियद्वदंतीहपुराविदः ।
तद्रूपंदर्शयास्माकं यदिदेयोवरोहिनः ॥ २७४ ॥

श्रुतिविज्ञप्ति (विनय) करती हैं, नारायणको आदिदे जितने तुम्हारे रूप हैं सो तो हम सब जानती हैं, (हे अच्युत!) वे सगुण ब्रह्म अर्थात् गुणावतार हैं, तिन्हों में हमारी पूर्णबुद्धि नहीं, जिनको हम ब्रह्म कहे हैं, सो रूप निरगुण परात्पर है, हमारी बाणी मन के गोचर नहीं सो स्वरूप कैसा है, सो नही जानें हैं, आनन्द मात्र तुम्हारा स्वरूप हैं यह तो निश्चय है, जो आपकी वर देने की इच्छा है तो तुम्हारा वह स्वरूप दिखाइये, २७२ से २७४

श्रुत्वैतत्दर्शयामास स्वलोकंप्रकृतेः परं ।
केवलानुभवानन्द मात्रमक्षरमध्यगं ॥ २७५ ॥
यत्रनिर्मलपानीया कालिंदीसरितांवरा ।
रत्नबद्धोभयतटी हंसपद्मालिसंकुला ॥ २७६ ॥
यत्र वृंदावनंनाम वनंकामदुघैर्द्रुमैः ।
मनोरमनिकुंजाढ्यं सर्वर्तुसुखसंयुतं ॥ २७७ ॥

अत्रगोवर्द्धनोनाम सुखनिर्जरसंयुतः।
नानाधातुमयःश्रीमान् सुपक्षिगणसेवितः ॥ २७८ ॥
नानारासरसोन्मत्तं यत्रगोपीकदम्बकं।
तत्कदम्बकमध्यास्थः किशोराकृतिरच्युतः।
दर्शयित्वेतितंप्राह ब्रूतकिंकरवाणिवः ॥ २७९ ॥

ये श्रुतियों के वाक्य सुनिके प्रकृति से परे अपना व्यापि वैकुण्ठलोक था सो दिखाया, केवल अनुभवमेंही जिसका आनन्द आवे अक्षर के मध्य है, जिसलोक में निरमल जल है, जिसका ऐसी कालिंदी जो श्रीजमुना नदीयों में श्रेष्ठ सो देखी, रत्नों से जड़ेहुवे दोनों तर्फ के तट हैं, हंस, पद्म, अलि, इनकर संकुल है, जिस लोक में वृन्दावन नाम्न वन हैं, जिसबन में कामदुघा रूप वृक्ष हैं, मन को हरण करें, ऐसी अनेक कुंज हैं। और छैहों ऋतु ग्रीष्म, वर्षा, शरत, हेमन्त, शिशिर, बसंत, ये ऋतु आदि आज्ञा कारिणी खडी हैं, जिस ऋतु के अनुभव की इच्छा हुई, सो ऋतु अनुकूल हैं, जिसलोक में श्रीगोवर्द्धन नाम परवत है, झरना झरते हैं, अनेक प्रकारकी गेरू प्रभृति धातु हैं, कज्जली शिला, सिंदूरी सिला, वाजनीशिला, सिंघासन घाटी, दानघाटी, अनेक निकुंज मंदिर, शय्यामंदिर, डोलतिबारी, चँदोवा, पिछवाई, जहां जो अपेक्षित सो पदार्थ सब सिद्ध शोभायमान हैं। और पक्षिगण जहां जैसा बोलना उचित समझते हैं सोई बोलते हैं, कोकिलादि ऐसे पक्षी भी सेवाकरते हैं, जहां परासोली प्रभृति रासस्थल हैं, और नृत्यरास के करनें वाली उनमत्त गोपियों के यूथ हैं, यूथों के मध्यमें किशोर अवस्था वाले अच्युत श्रीकृष्ण भगवान्

शोभायमान हैं, जिन्हों का वेदकी ऋचाओं को दर्शन हुवा, तव प्रभु श्रुतिन से कहनें लगे ॥ २७५ से २७९ ॥

दृष्टोमदीयोलोकोयं तयोनास्तिपरंवरं ॥ २८० ॥

हमारा लोक देखो इससे आगे और कुछ नहीं है और इससे श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। फिर श्रुति विज्ञप्ति (प्रार्थना) करती हैं॥ २८०

कंदर्पकोटिलावण्ये त्वयिदृष्टेमनांसिनः ।
कामिनीभावमासाद्य स्मरक्षुब्धानसंशयः ॥ २८१ ॥
यथात्वल्लोकवासिन्यः कामतत्वेनगोपिका ।
भजन्तिरमणंमत्वा चिकीर्षाजनिनस्तथा ॥ २८२ ॥

हे कोटिकंदर्पलावण्यनिधे! तुम्हारे दर्शन से हमारो मन कामिनी भाव को प्राप्त हो स्मर करके चंचल हुवा है, इसमें संशय नहीं, जैसे तुम्हारे लोक वासी जो गोपिका सो काम तत्व कर तुमको भजती हैं, वैसे ही हमको रमण की अभिलाषा है, तब प्रभु वर देते हैं ॥ २८१-२८२ ॥

दुर्लभोदुर्घटश्चैव युष्माकंसुमनोरथः ।
मयानुमोदितः सम्यक् सत्यंभवितुमर्हति ॥ २८३ ॥
आगामिनिविरंच्योथ जातेसृष्ट्यर्थमुद्यते ।
कल्पंसारस्वतंप्राप्य व्रजेगोप्योभविष्यथ ॥ २८४ ॥
पृथिव्यांभारतेक्षेत्रे माथुरेममसण्डले ।
वृन्दावनभविष्यामि प्रेयान्वोरासमण्डले ॥ २८५ ॥
जारभावेनसुस्नेहं सुदृढंसर्वतोधिकम् ।
मयिसंप्राप्यसर्वेपि कृतकृत्याभविष्यथ ॥ २८६ ॥

श्रीकृष्ण प्रभु कहते हैं-तुम्हारो उत्तम जो मनोरथ है दुर्लभ है, दुःख करके लभ्य है, परन्तु अलभ्य नहीं यह सूचित हुवा और दुर्घट (कठिन) है, परन्तु हम सराहना अर्थात् प्रशंसा करते हैं, इस कारण सत्य होने के योग्य है। अब जो ब्रह्मा श्रृष्टि करता होवेंगे जब सारस्वत कल्प आवेगा, तब तुम ब्रज में गोपी स्वरूप में प्रगट होगी, पृथ्वी में जो भरतखण्ड है, जहां हमारा मथुरा मण्डल है, जिस में श्रीवृन्दावन है, वहां रास-मण्डल में तुम्हारा मनोरथ पूरण होगा और वहां दो सम्बन्ध फल साधक होवेंगे ॥ २८३ से २८६ ॥

देहेनभावतोवापि संबंधःफलसाधकः ।
नंदादयोदेहजेन प्रादुर्भावे न गोपिका ॥ २८७ ॥

देह संबन्धे है और भाव संबन्ध है सो देह संवन्धे श्रीनन्दादिकों ने श्रीकृष्णचन्द्र पाये। और भावसंबन्ध करके गोपिजनों ने श्रीकृष्ण प्राणातिवल्लभ को पाया। और जारभाव संबन्ध करके ब्रज की परमसुन्दरी स्त्रियों ने श्रीकृष्णचन्द्र पाये। जारभाव निरन्तर होने से स्नेह दृढ हुवा सो भाव संवन्ध करके तुम सब मुज को प्राप्त हो कर कृतकृत्य होगी। ऐसा वर प्रसन्न हो कर श्रीपुरुषोत्तम कृष्ण भगवान् ने वेद की ऋचा तथा श्रुतियों को दिया, सो श्रुतिरूपा और कुमारिकारूपा दोनों ही श्रीकृष्ण को प्राप्त हुई। इस ही अभिप्राय से दासभाव, वात्सल्य भाव, सख्य-भाव, कान्त भाव, श्रृङ्गाररसमयी से भगवत् प्राप्ति का मारग आचार्यों ने प्रगट कर प्रचार किया है, उस भाव रूपा (स्नेह) प्रेमाभक्ति से भगवत् की शरण में प्राप्त होजाते हैं ॥ २८७ ॥

ये यथामांप्रपद्यन्ते तांस्तथैवभजाम्यहम् ।
ममवर्त्मानुवर्तन्ते मनुषाः पार्थ सर्वशः ॥ २८८ ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ४ अध्याय ११ श्लोक)

श्रीकृष्णभगवान् अर्जुन से कहते हैं—जो मनुष्य जिसभाव अर्थात् जिस संवन्ध से मुजको भजते हैं (सेवा करते हैं) उनको उसही भावसे भजताहूं (प्राप्त) होताहूं, यह सिद्ध किया, इस भगवत के वचनानुसार श्रीआचार्य्य गुरु भगवान् से रसात्मक संवन्ध भावना की रीति प्राप्त कर भक्त पुरुष नित्यपरिकर में पँहुचकर सेवाका परमानन्द सुख लाभ कर लेते हैं ॥ २८८ ॥

* श्रीकृष्णभगवान् प्रादुर्भाव (प्राकट्य) वर्णन *

द्वापर युगके २५ वर्ष शेष (बाकी) रहे जब श्रीकृष्णावतार हुवा ।

* मंजुछन्द *

द्वापर युग पच्चीस वर्ष जब रहे प्रगटभये श्रीघनश्याम ।
ग्यारह वर्ष करी ब्रजलीला मथुरा चोदह वर्ष ललाम ॥
इकशात वर्ष द्वारिका लीला कर पुनिगये स्वयं निजधाम ।
वर्ष सवासो भूतल दर्शन दिये सरस पूरे मनकाम ॥

* श्रीशुकसम्प्रदाय धामक्षेत्र वर्णन दोहा *

श्रीशुकमुनि चरन्दास गुरु, तिनको उर धर ध्यान ।
धाम क्षेत्र निज संप्रदा, तिनको करू वखान ॥ १ ॥
सम्प्रदाय शुकदेवमुनि, आचारज चरन्दास ।
द्वारे बावन जानियें, जग में प्रगट प्रकास ॥ २ ॥
लीला रास विलास की, करे भावना नित्त ।

अष्टयाम सेवा विषे, निशि दिन राखे चित्त ॥ ३ ॥
निगम्बोध शुभ क्षेत्र हे, सामवेद लो मान ।
शाखा हे रारायणी, बुधजन लेहु पिछान ॥ ४ ॥
व्यास सूत्र हैं सूत्र शुभ, सांख्यशास्त्र अनुमान ।
गायत्री युग नाम जप, अच्युतगोत्र वखान ॥ ५ ॥
मंत्र राज चूड़ामणी, प्रेम सरोवर जान ।
रहस्य अनन्यनकी गिनों, सामिप मोक्ष पिछान ॥ ६ ॥
धाम श्रीवृन्दा विपिन, इष्ट राधिका-श्याम ।
मुखसों जपिये जाप नित, जुगल विहारी नाम ॥ ७ ॥
राधा-कृष्ण सु कुंड है, अरु कहियत नँदग्राम ।
पुर वरषानो प्रियाको, सब विधि पूरन काम ॥ ८ ॥
सेव्य सदा श्रीराधिका, सरस विहारी जान ।
सेवक समझे आपको, भाव यही पहचान ॥ ९ ॥
चरणदासीय सु वैष्णव, जग पद्धति विख्यात ।
जानत हैं सब संतजन, छिपी नहीं कुछ बात ॥ १० ॥
परम्परा यह रीति है, श्रीगुरु दई बताय ।
सरसमाधुरी समझ मन, संशय देहु मिटाय ॥ ११ ॥

* पंचसंस्कार नाम दोहा *

धाम छाप अरु श्रीतिलक, हरि संवन्धी नाम ।
तुलसी कंठी कंठ में, बांधें गुरु अभिराम ॥ १२ ॥
करें मंत्र उपदेश जो, ताहि सुनावें कान ।
संस्कार ये पांच हैं, सरस समझ सुख मान ॥ १३ ॥
बीज मंत्र ओंकार है, श्रीभागवत पुरान ।
गिरि गोवर्द्धन देवता, मथुरा पुरी सुजान ॥ १४ ॥

पूजाकी विधि समझिये, पुरुष सूक्त सों मान ।
अरु षोड़श उपचारसों, करें संत हित ठांन ॥ १५ ॥
राधा-कृष्ण उपासना, भगवत गीता ज्ञान ।
सहज समाधि लगी रहै, और मानसी ध्यान ॥ १६ ॥
बृन्दादेवी बैष्णवी, नाद वंशिका नाद ।
श्रीजमुना रस रूपिणी, गंगा तीरथ आद ॥ १७ ॥

* कंठी तिलक निर्णय *

श्रीतिलक मस्तक रचे, शुभ ज्योती आकार ।
चिन्ह चन्द्रिका नाम प्रिय, सुंदर करे सुधार ॥ १८ ॥
वंशपत्र सम बाहु में, हृदय कमल आकार ।
अपर तुलसिका पत्र सम, रचे रसिक रिझवार ॥ १९ ॥
कंठी कंठ सु युगल शुचि, तुलसी धारे नित्त ।
पीताम्बर वस्तर पहर, अँन्य धरे नहिं चित्त ॥ २० ॥
जुगल जनेऊ पीत रंग, पहरे प्रेम बढाय ।
गोपीचंदन को तिलक, करे हिये हरषाय ॥ २१ ॥

* उत्सव निर्णय दोहा *

कृष्णपक्ष बैशाख में, मावस तिथि लो जान ।
प्रगटे श्रीशुकदेवमुनि, उत्सव करे पिछान ॥ २२ ॥
शुक्लपक्ष बैशाख की, अक्षय तृतिया जान ।
रचि चन्दन श्रृङ्गार हरि, सीतल भोग बिधान ॥ २३ ॥
जेष्ट मास में कीजिये, जुगल फूल श्रृङ्गार ।
फूल मंडली को रचे, बँगला विविधि प्रकार ॥ २४ ॥
खस बँगला रचिये सरस, सनमुख चलत फुवार ।
गुलदस्ता सनमुख धरे, निरखें युगल उदार ॥ २५ ॥

आषाढ शुक्ल तिथि पूर्णिमा, प्रगटे बेदव्यास ।
गुरु पूजा बिधि सों करे, हिय धर हरष हुलास ॥ २६ ॥
श्रावण झूलन जुगल को, उत्सव करे उमंग ।
गावे राग मलार को, रसिकनको ले संग ॥ २७ ॥
राधा-कृष्ण सु अष्टमी, उत्तम भादों मांस ।
उभय पक्ष उत्सव उमँग, करे रसिक उपवास ॥ २८ ॥
भादों शुक्ला तीजको, प्रगटे श्री महाराज ।
जन्मोत्सव बिधिसों करे, ले सँग रसिक समाज ॥ २९ ॥
आश्विन कृष्णसु पक्षमें, सांझी सरस रचाय ।
भोग धरे श्रीयुगल को, गावे पद हुलसाय ॥ ३० ॥
कार्तिक मावस दिवाली, जोवे घृत के दीप ।
द्यूत खिलावे युगल को, सहचारि भाव समीप ॥ ३१ ॥
कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा, अन्नकूट त्योंहार ।
भोग समर्पें युगल को, सामाँ बिविधि प्रकार ॥ ३२ ॥
पौष मांस में युगल को, खिचरी भोग धराय ।
भोग उसारे भाव कर, रसिक संग मिल पाव ॥ ३३ ॥
माघ शुक्ला तिथि पंचमी, उत्सव करे वसंत ।
फाग खिलावे युगल को, फागन में बुधवंत ॥ ३४ ॥
चैत कृष्ण की प्रतिपदा, जुगल झुलावे डोल ।
पधरावे प्रीतम प्रिया, निरख बिके बिन मोल ॥ ३५ ॥

* धारना रहस्य *

जुगल नाम जपिये सदा, मुख सों वारम्वार ।
विना समर्पित्त वस्तु को, करे न अंगीकार ॥ ३६ ॥
धर्म सनातन वैष्णव, मत भागवत विचार ।

रहै अनन्यन की रहनि, क्षमा शील उरधार ॥ ३७ ॥
अयाचीक अस्थिर दशा, समदृष्टी निस्काम ।
संतोसी सात्विक व्रती, सुमरे राधे-श्याम ॥ ३८ ॥
मुक्तिआदि सुख सबतजे, प्रेमहि में गलतान ।
रस निकुंज सेवा युगल, करे सरस पदगान ॥ ३९ ॥
पहर रातसों प्रातलों, उठ आलश कर दूर ।
ध्यान भजन सुमरन करे, पहुंचे युगल हुजूर ॥ ४० ॥
अमरलोक लीला ललित, पाठकरे उठ नित्त ।
युगल भावना ध्यान में, निशि दिन राखे चित्त ॥ ४१ ॥
श्रीवृन्दावन वास कर, सुमरे राधे-श्याम ।
ब्रज चौरासी कोसमें, रमें रसिक अभिराम ॥ ४२ ॥
श्रीराधे शुखदेव भजि, श्यामचरनही दास ।
संतत जपिये जाप यह, जान परम सुखरास ॥ ४३ ॥
मिथ्या जाने जक्त सब, सत्य राधिका श्याम ।
सन्त सनेही समझिये, संगी दम्पति नाम ॥ ४४ ॥
हरि गुरु सेवे प्रीति सों, अर्पे तन धन प्रान ।
रसिक सजाती सँगमिले, करे प्रेमरस पान ॥ ४५ ॥
वृथा न खोवे समय को, शुभ करनी करलेव ।
चौसर सतरंज गंजफा, खेल सकल तजदेव ॥ ४६ ॥
रसिकनकी रहनी कही, ताकी धारन धार ।
सरसमाधुरी धामबस, निरखे नित्य विहार ॥ ४७ ॥

* दशकर्म त्याग वर्णन *

तीन कर्म तनके कहे, समझो सन्त सुजान ।
चोरी जारी जीवकी, हिंसा की तजवान ॥ ४८ ॥

मनके कर्म सो तीन हैं, तिनको त्यागे जान ।
खोटी चितवन बैरही, अरु कहियत अभिमान ॥ ४९ ॥
मिथ्या बोलन दुरबचन, हरिचरचा बिनआन ।
परनिन्दा नहिं कीजिये, बचन कर्म पहचान ॥ ५० ॥

* दुर्व्यसन त्याग वर्णन *

भङ्ग तमाखू अरु अमल, सुल्फा चर्स प्रमाद ।
इनको पीवे अधम नर, जन्म गुमावे बाद ॥ ५१ ॥
लहसन गाजर प्याज पुनि, कहियत दाल मसूर ।
ये अभक्ष वस्तू कही, इन सों रहिये दूर ॥ ५२ ॥
काम क्रोध अरु मोह मद, लोभ दीजिये त्याग ।
शुभ लक्षन धारन करे, भक्ति ज्ञान वैराग ॥ ५३ ॥

* श्रीगुरु द्वारा वर्णन *

गुरु द्वारा शुक सम्प्रदा, इन्द्र प्रस्थ अस्थान ।
राजे जहँ चरनदास प्रभु, कियो मानसी ध्यान ॥ ५४ ॥
जन्म भूमि महाराज शुचि, ग्रामसु डहरा नाम ।
दिये दर्स शुकदेवमुनि, कीने पूरन काम ॥ ५५ ॥
श्रीशुकतारसु आश्रम, गंगा तट अभिराम ।
नाम श्याम चरनदास के, दीक्षादी सुखधाम ॥ ५६ ॥
वंशीवट बट जानिये, सेवा कुंज निवास ।
जुगल प्रिया प्रीतममिले, प्रगट दिखायो रास ॥ ५७ ॥

* नित्यनेम विधि *

श्रीगुरु पद बन्दन करे, उठत प्रातही काल ।
आचारज निज संप्रदा, श्री शुकमुनी दयाल ॥ ५८ ॥
पुनि वंदन कर प्रेमयुत, चरनदास हित मान ।

रस आचारज संप्रदा, जिनको करिये ध्यान ॥ ५९ ॥
श्रीगुरु भक्तानन्दजी, स्वामी रामहि रूप ।
प्रनमें तिनके पद कमल, आनन्द मई अनूप ॥ ६० ॥
परम्परा से आदिले, आश्रित गुरु परियन्त ।
प्रथक प्रथक बहुभांति सों, वंदन करे अनन्त ॥ ६१ ॥
आचारज भूतल विषे, कुंज सहचरी रूप ।
लखे रूपकी एकता, भावहि मांहि अनूप ॥ ६२ ॥
श्री ललितादिक अष्टअलि, सब चर्नावत सन्त ।
करे वन्दना पदकमल, सबही सन्त महन्त ॥ ६३ ॥
भक्तन की नामावली, रसिकन के पदबन्द ।
ब्रज चौरासी कोसको, प्रणमें सह आनन्द ॥ ६४ ॥
वन उपवन वन्दन करे, पुनि वृन्दावन धाम ।
श्रीजमुना रस रूपिणी, पुनि पुनि करे प्रनाम ॥ ६५ ॥
सब कुंजन सिर मोर जो, श्रीमत सेवाकुंज ।
अष्ट अंग वंदन करे, जोहे रसकी पुंज ॥ ६६ ॥
जुगल विहारी प्रिया पिय, कुंजविहारी लाल ।
जुगल मंत्र रस रूपजो, जपि जिय होय निहाल ॥ ६७ ॥
कंठमाल तुलसी लसे, सो निरखे निज नैन ।
गावे पद श्री गुरुन के, श्री जमुना रस ऐन ॥ ६८ ॥
मंगल आदिक आरती, गावे हिय हुलसाय ।
सरसमाधुरी रीति यह, किये प्रेम सरसाय ॥ ६९ ॥
पाछे निजकृत देहकर, पुनि कीजे असनान ।
रचे तिलक निज अंगमे, शुभ द्वादश स्थान ॥ ७० ॥
श्री तिलक मस्तक रचे, चिन्ह चंद्रिका भाल ।

पीताम्बर अंग उपरना, ओढे होय निहाल ॥ ७१ ॥
सेवा राजस मानसी, गुरु जो वइ बताय ।
सावधान हो कीजिये, तन मन प्रेम लगाय ॥ ७२ ॥
प्रथम आचमन तीन कर, बैठे आसन आप ।
भूमि देह निज शुद्धि हित, मंत्रित जल छिरकाय ॥ ७३ ॥
ताके पीछे कीजिये, विधिवत प्राणायाम ।
बहुर कीजिये ध्यानही, श्रीमत श्यामा-श्याम ॥ ७४ ॥
मौन होय फिर जपकरे, श्रीगुरु मंत्रसुमाल ।
बास अमरपुर को लहै, छूटे जग जंजाल ॥ ७५ ॥
श्रीस्वामी बलदेवगुरु, दीनी रीती बताय ।
सरसमाधुरी प्रेमसों. सेवा विधि कहि गाय ॥ ७६ ॥

* श्रीशुकमुनिराज स्वरूप भाव वर्णन दोहा *

श्याम बरण सुंदर वदन, अतिप्रसन्न शुकरूप ।
वय है शोडष वर्ष की, अद्भुत अधिक अनूप ॥ ७७ ॥

(श्याम वर्ण हेतु वर्णन)

आदि अन्त तें रहित हे, सब दिशि एक अकाश ।
अविनाशी अस्थिर सदा, भाव यही सुखरास ॥ ७८ ॥
सबही रंग कच्चेगिनो, पक्को है रंग श्याम ।
श्याम रंग रेंनी रंगे, शुकमुनि वर अभिराम ॥ ७९ ॥
श्यामा की सेवामगन, त्रातिय हेतु तन श्याम ।
अन्तर श्यान श्याम मइ, त्यों बाहर वपु श्याम ॥ ८० ॥
सतचित आनंद रूप है, तातें परम प्रसन्न ।
पूरन ब्रह्म स्वरूप हैं, ध्यान धरें सो धंन्न ॥ ८१ ॥
बिना बसन भूषन सजे, शोभा को नहिं पार ।

भूषन की शोभा बढे, ऐसो अंग निहार ॥ ८२ ॥
श्याम बरन तन माधुरी, जिन देखी नहिं होय ।
सो देखो शुकरूप को, ताप विरह हिय खोय ॥ ८३ ॥
बिना बसन भूषन लखो, जिननांही हरिअंग ।
सो निरखो शुक माधुरी, उपजे प्रेम उमंग ॥ ८४ ॥
श्याम दृगन में पूतरी, सूझत सब संसार ।
श्याम अङ्गके ध्यानसे, दीखत युगल बिहार ॥ ८५ ॥
श्यामघटा घन बादरी, बरसावे जलधार ।
उपजावे त्रण अन्न जग, जीवन को आधार ॥ ८६ ॥
श्याम कमल सरवर लसे, सौरभ लुब्ध मलिन्द ।
श्याम मणी सदृश कहैं, सुन्दर बपु गोविन्द ॥ ८७ ॥
सुरमों काजर दृगनको, भूषण अति अभिराम ।
श्याम भाव निज नैन में, धारें ब्रजकी बाम ॥ ८८ ॥
श्याम रूप दर्शन किये, होवे मन आल्हाद ।
मूरति श्यामा श्यामकी, हियमें आवत याद ॥ ८९ ॥
श्याम बिंदनी सोहनी, श्यामांजू के शीश ।
श्याम रंग सब रंगको, है ईशन को ईश ॥ ९० ॥
नीलाम्बरको श्यामरङ्ग, श्यामसु अलककपोल ।
मिस्सी श्यामसु दन्तमें, बरबस ले मनमोल ॥ ९१ ॥
श्यामसु गुदना गातमें, श्यामचिबुक में बिन्द ।
शालग्राम हूं श्याम हैं, निरख होय आनन्द ॥ ९२ ॥
इत्यादिक पहिचानियें, श्याम रंग बपु भाव ।
सरसमाधुरी भावधर, बार बार बलिजाव ॥ ९३ ॥

* श्रीश्यामचरणदास स्वरूप भाव *

अतिसांवल अति गौर नहिं, हैं मिश्रित रंगरूप ।

श्याम गौर झलकें दोऊ, ऐसो अंग अनूप ॥ ९४ ॥
श्यामछटा किंचित गिनों, गोर प्रगट रंग लेख ।
गौरांगी गुन निधिप्रिया, यही ध्यान कर देख ॥ ९५ ॥
उपरेनां ज़र तारको, मखतूली रंग श्याम ।
नीलांबर के भावको, धारें सिर अभिराम ॥ ९६ ॥
पीतरंग अंग चोलना, पीताम्बर को भाव ।
प्रीतम पीत दुकूल लख, मनमें अति हरषाव ॥ ९७ ॥
बसन अमित रंग गूदरी, ओढें अङ्ग दयाल ।
सखी मंजरी सहचरी, भाव रंगीली बाल ॥ ९८ ॥
श्याम सचिक्कन शीशपर, कटिलों छूटे केश ।
भावक जन समझें भले, सखीभाव आवेश ॥ ९९ ॥
कंचन चुरी करन में, बाजू रतन जड़ाव ।
अंगुरिन छल्ला आरसी, सखीरूपको भाव ॥ १०० ॥
नेंना कजरारे सरस, छके जुगल के ध्यान ।
दन्तन मिस्सी सोहनी, अति सुंदर सुखखान ॥ १०१ ॥
अधरपान लालीललित, मुख मधुरी मुसकान ।
मेंहदी कर जावकपदन, अतिही ललितललाम ॥ १०२ ॥
परिकरयुत युगभावयुत, तन मन बसन निहार ।
चरनदास को ध्यान उर, रसिक लीजिये धार ॥ १०३ ॥
प्रिया कहूं प्रीतम कहूं, सखी कहूं मनमान ।
अद्भुत रूप अनूप अति, चरनदास गुरु ध्यान ॥ १०४ ॥
धंन्य धंन्य श्रीसुखसखी, चरनदासि सखि धंन्य ।
इनके जो जन आश्रय, तिन समान नहिं अंन्य ॥ १०५ ॥
श्रीशुकमुनिवरमुकटमणि, व्यासमुवन महाराज ।

चार सम्प्रदा विदित जग, सबहिन के सिरताज ॥ १०६ ॥
परिचारक भगवत धरम, सबके पूज्य महान ।
साक्षात् श्रीकृष्णवपु, व्यापक विष्णु समान ॥ १०७ ॥
तत्व भागवत तब लहे, कृपा करें शुकदेव ।
बिना दया मुनिराज के, अगम अगोचर भेव ॥ १०८ ॥
चार सम्प्रदा वैष्णवी, प्रथम नवायो शीश ।
तत्व भागवत को तभी, समझो बिश्वा बीस ॥ १०९ ॥
सोइ करूणा करके मिले, चरणदास को आय ।
श्रीशुकतारसु आश्रम, तहां लिये अपनाय ॥ ११० ॥
गुरु दीक्षा विधिवत दई, मंत्र दियो हरषाय ।
जुगल ध्यान प्रेमापरा, भक्तिदई समझाय ॥ १११ ॥
योग ज्ञान बैराग के, समझाये सब अंग ।
श्रीशुकमुनि निज सम्प्रदा, थापी सहित उमंग ॥ ११२ ॥
चरणदासि पद्धति परम, प्रगट करी शुकदेव ।
प्रेममंजरी अवतरी, चरणदास गुरुदेव ॥ ११३ ॥
सेव्य रूप तिनके सदा, युगल बिहारी लाल ।
टहल महल श्रीकुंज की, सहचरि रूप रसाल ॥ ११४ ॥
चरनदासि शुक सम्प्रदा, द्वारे अमित अनन्त ।
बावन गादी मुख्यहैं, जानें हरिजन सन्त ॥ ११५ ॥
शरणागत पालक बिरद, अशरण शरण पिछान ।
आसुर जन दैवी करन, प्रेम भक्ति दे दान ॥ ११६ ॥
कहन मांहि आवे नहीं, श्रीशुकचरन प्रभाव ।
अवलोके जीवन चरित, जब जानें भल भाव ॥ ११७ ॥
महिमा अपने भाग्य की, मोपे कही न जाय ।

सुकृत जन्म अनेक के, उदय भये हैं आय ॥ ११८ ॥
शरण गही शुकसम्प्रदा, चरनावत वर सन्त ।
विदित जक्त छानी नहीं, अतिशय शोभा वन्त ॥ ११९ ॥
श्रीस्वामी महाराज वर, रामरूप उर धार ।
गुरु भक्तानंद दूसरो, जग में नाम प्रचार ॥ १२० ॥
इन्द्रप्रस्थ अस्थान में, गुरु द्वारो विख्यात ।
स्वामीजी महाराज को, छिपी नहीं कुछ बात ॥ १२१ ॥
अस्ती अरु द्वै जानियें, हुवे शिष्य तिन सन्त ।
राम कृपाल जु दासजी, पदवी लही महन्त ॥ १२२ ॥
तिन के जानो शिष्य बड, श्री विहारीदास ।
जिनके ठाकुरदासजी, कियो लूकसर बास ॥ १२३ ॥
तिनके चेले जानियें, श्री बलदेव जु दास ।
सरसमाधुरी दास निज, तिन चरनन को खास ॥ १२४ ॥
गौर बरन मनको हरन, तिनको सुंदर रूप ।
माधुरी मूरति सोहनी, सुंदर महा अनूप ॥ १२५ ॥
त्यागी बैरागी परम, प्रेम भक्ति के रूप ।
ज्ञान योग पूरन कला, सचिदानंद स्वरूप ॥ १२६ ॥
इच्छा धारी अवनि में, विचरत रहैं स्वच्छन्द ।
भजन भावना में मगन, पूरन प्रेमानन्द ॥ १२७ ॥
आसुर जन दैवी करन, जिनको सहज सुभाव ।
अभय दान के देनको, निसिदिन चित में चाव ॥ १२८ ॥
ऐसे सतगुरु की शरन, मैं पाई बड़ भाग ।
सरसमाधुरी नित रहो, तिन चरनन अनुराग ॥ १२९ ॥
कृपा गुरुन की अति प्रबल, मो मन दृढ विश्वास ।
निस्सा धन शरणागति, और न दूजी आस ॥ १३० ॥

कीनों स्वकिये दासको, धर निज कर मम शीश ।
लज्जा सब विधि उनहि को, हैं मेरे निज ईश ॥ १३१ ॥
सबही विधि समरथ गुरु, दया गुरुन की सार ।
भक्ति मुक्ति गति गुरु चरन, लीने निज उर धार ॥ १३२ ॥
मोसम अधमन जक्तमें, श्रीगुरु अधम उधार ।
मैं पापी पातक हरन, श्रीगुरु चरन तुम्हार ॥ १३३ ॥
त्राहि त्राहि आरत हरन, चरन शरन मोहिजान ।
राखियो सुधिमम दीनकी, तुमतजि गतिनहिआन ॥ १३४ ॥
माता पिता भ्राता सखा, इष्ट एक गुरु देव ।
भलो बुरो हों रावरो, देव युगल पद सेव ॥ १३५ ॥
कौन सुनें मो दीनकी, तुम बिन नाथ पुकार ।
काको प्रण अशरण शरण, यह उर लेहु विचार ॥ १३६ ॥
यही समझ करुना करो, हरो विषम भव भीर ।
श्रीगुरु देव उबारिये, भव सागर गंभीर ॥ १३७ ॥
विनति सुनिये कान दे, श्रीसतगुरु बलबीर ।
सरसमाधुरी तुम बिना, कौन बँधावे धीर ॥ १३८ ॥

* सखीरूपा आचार्य्यवतार *

ना. आचार्य	नाम सखी
सनक	१ हरनी
सनंदन	२ हारनी
सनातन	३ हरिता
सनत्कुमार	४ हीणा
नारद	५ सुकुशा
वेदव्यास	६ रंगा
शुकाचार्य	७ श्यामला
श्याम-चरणदास	८ प्रेम-मंजरी

* नकशा अष्टकुंज श्रीवृन्दावन शुकसम्प्रदाय के अनुकूल *

नं	नाम कुंज	वर्ण कुंज	नाम समय	नाम सखी	वर्ण पौशाक	नाम सेवा	विशेष वर्णन
१	रंगमहल मंगला कुंज.	लालमणि जटित.	मंगला प्रात	सुखसखी चरणदासी.	अरुण चम्पई.	गोनस्तव.	जुगल जगाना
२	श्रृंगार कुंज	पीतमणि जटित.	एक पहर दिन चढे.	सुखदा, गन्धर्वा.	पीतवस्त्र, भूषण-पुखराज	बीन बजाना, बसन्त गाना.	श्रृंगार होकर शतरज कोलि, व श्रृंगार भोग.
३	फूल कुंज.	फूल रचित.	दोय पहर दिन चढे	आल्हादिनी, प्रमोदिनी.	चन्दनीकपुरी वस्त्र, फूल भूषण	बीजणा करणा चरणसेवा.	राजभोग होकर जुगल पौढते हैं.
४	प्रमोद कुंज.	पन्ना रचित.	तीन पहर दिन चढे.	"	मलयागिरी.	नृत्यकरना, मोरछल करना.	उत्थापन व. जलकेलि ऋतुफल भोग.
५	हिण्डोल कुंज.	लता पता आच्छादित.	च्यार पहर दिन चढे	कलवयनका, मधुरस्वरा	हरित	मल्हार गाना, तम्बूरा बजाना.	वनविहार हिंडोल-झूलन संध्या आरती
६	आनन्द कुंज.	नीलमणि रचित.	एक पहर रात	आनन्दा, सहजानन्दिनी	नील वस्त्र.	विवाह गीत गान, सितार बजाना.	इस कुंजमें विवाह विनोद होता है.
७	सेवाकुंज.	चौसठखंमानाना रंगरत्न जटित	दोय पहर रात.	रसपुंजिका, गुणप्रकाशिका	चम्पई और सखियों के पृथक.	मृदंग सारंगी.	इस कुंजमें रासलीला होती है.
८	प्रेमप्रेकास निकुंज.	गुलाबीरंगमणि रचित.	तीन पहर रात.	प्रेमप्रभा, जुगतानन्दिनी	गुलाबी.	मदनोद्दीपनक्रम, कोकवाक्य रचना.	इस कुंजमें मानलीला उद्दीपन.
९	शयन कुंज.	सप्तरंग मणि जटित	च्यार पहर रात.	प्रमुदा प्रमुद-मंगला.	विचित्र चूनरी.	रक्षाकुंज, चरण सेवा.	इस कुंजमें सेजभोग व आरतीहोयँ सैनहोताहे

॥ श्री जी के १६ तिथि वस्त्र धारण ॥

एकैं के दिन अर्क सम, दोयज तंदुल रूप।
घृतसम तृतिया के दिवस, चौथ जव हरित अनूप ॥ १३९ ॥
पांचै को रँग मूंग सम, छट्ठ सुवर्ण समान।
सातें को सुविचित्र रँग, पहरावे कर मान ॥ १४० ॥
आठें को अर्क बीजवत, नौमी को जिमि धूम।
दसमी को गो मूत्र ज्यों, ग्यारस जव रँग जूम ॥ १४१ ॥
बारस दुग्धा कार ही, तेरस गुड़ ज्यों लाल।
चौदस रंग कसूंम सम, पून्यों स्वेत सँभाल ॥ १४२ ॥
मावस श्याम सुहावने, जुगल अङ्ग पहराय।
सोलह तिथि की रीति यह, सरस कही समझाय ॥ १४३ ॥

* नक़शा तिथि वस्त्र धारण *

तिथि	वस्त्र
१	अर्कपत्र वस्त्र
२	तंदुल स्वेत वस्त्र
३	घृत स्वेत वस्त्र
४	जव हरित वस्त्र
५	मूंग हरित वस्त्र
६	सुवर्ण पीत वस्त्र
७	विचित्र वस्त्र
८	अर्कबीज वस्त्र
९	धूम्र वस्त्र
१०	गोमूत्र पीत वस्त्र
११	जव रंग वस्त्र
१२	दुग्ध स्वेत वस्त्र
१३	गुड़ लाल वस्त्र
१४	कसूंभ वस्त्र
१५	स्वेत वस्त्र
३०	श्याम वस्त्र

* सप्तवार वस्त्र धारण वर्णन *

छप्पै—दीतवारको अरुण, सोमको स्वेतपिछानों।
मङ्गल गुड़ सम लाल, बुद्धको हरित सुमानों॥
बृहस्पति पीत पुनीत, शुक्र वैचित्र धरावे।
शनिको श्याम सुरङ्ग, अङ्ग दम्पति पहरावे॥

सातवारकीरीति यह, रसिक सुनों चितलायके।
सरसमाधुरी प्रेमसों, सेवा कर हुलसायके ॥ १ ॥

* वार वस्त्र धारण वर्णन *

रविवार	सोम.	मङ्गल.	बुध.	वृहस्पत.	शुक्र.	शनि.
लाल-वस्त्र.	स्वेत-वस्त्र.	खारवा अर्थात् चोल वस्त्र.	हरित-वस्त्र.	पीत-वस्त्र.	चित्रवि-चित्र व.	श्याम-वस्त्र.

॥ दोहा ॥

तिथि अरु बारन के लिखे, करन युगल श्रृङ्गार।
प्रथक प्रथक रँग वस्त्र के, वरने भेद विचार ॥ ११४ ॥
यह मर्यादा नेम सब, प्रेमसु परम प्रधान।
जैसी रुचि हो रसिक की, वस्त्र धरे हित मान ॥ ११५ ॥
भाव-ग्राही श्री युगल, यह निश्चय कर जान।
करे भावसों यथा रुचि, सेवा सरस पिछान ॥ ११६ ॥

* मुक्ति षट् प्रकार *

सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सायोज्य, जीवनमुक्ति, विदेहमुक्ति; इन छः मुक्तियों का श्रीश्यामचरणदासजी महाराज व गुरु छोनाजी के संवाद रूप षट्रूप मुक्ति ग्रन्थमें पृथक २ वर्णन है।

* धाम वर्णन *

गोलोक, (नित्यव्रज) साकेत, वैकुंठ, अमरलोक (परधाम) इनका वर्णन भक्तिरसमंजरी ग्रन्थ में है जिसमें श्रीश्यामचरणदासजी महाराज व रामसखीजी का संवाद है, भिन्न २ से विस्तार जिसको जानने की इच्छा हो उक्त भक्तिरसमंजरी ग्रन्थ में देखो।

भगवद्लीलाभेद—ऐश्वर्य, माधुर्य, आश्चर्य, आसुर व्यामोह।
चतुर्व्यूह—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध।

* मंजु छन्द *

बल ऐश्वर्य ज्ञान अरु शक्ति तेज वीर्य को लीजे जान।
यह षड्गुण संपन्न कृपानिधि वासुदेव कहियत भगवान॥
शक्ति तेज संकर्षण द्वैगुण ज्ञान अरु बल प्रद्युम्न पिछान।
वीर्य और ऐश्वर्य उभयगुण सो अनिरुद्ध सरसमन मान॥ १॥
रजगुण रूप जानिये ब्रह्मा सो प्रद्युम्न सृष्टिकरतार।
सतगुण रूप विष्णु प्रतिपालक सो अनिरुद्ध सु लेहु विचार॥
तमगुण रूप शंभु संहारक संकर्षण सो लेह निहार।
वासुदेव त्रयरूप सरस है, निज निज कार्य करे संसार॥ २॥

* चार शरीर *

स्थूल[१], सूक्ष्म[२], कारण[३], तुरीय[४]—

स्थूल—प्रत्यक्ष में दिखनेवाला जाग्रत अवस्था में।
सूक्ष्म—पंच ज्ञानेन्द्रिय और चतुष्टय अंतःकरणयुक्त स्वप्नावस्थामें।
कारण—वासनामय सुषुप्ति अवस्था में।
तुरीय—सच्चिदानन्दात्मकतत्वस्वरूप माया कर्मकालस्वभावरहित।

* तीन समाधि *

ज्ञान[१] समाधि, योग[२] समाधि, भक्ति[३] समाधि—

१—भगवान को चराचर में व्यापी देखना, अखण्डरूप से और उसमें तदाकार होजाना, यह ज्ञान-समाधि कहलाती है।
२—प्राणायाम, धारणा ध्यान आदि अष्टाङ्गयोग करके त्रिपुटी रहित लय समाधि को, योग समाधि कहते हैं।

३—भगवंत स्वरूप ध्यान व सेवामें अखण्ड तैलवत् धार तदाकार-वृत्ति होजाना देहानुसन्धान रहित, इसको भक्ति-समाधि या सहज प्रेमानन्द समाधि कहते हैं।

* परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रकी सोलह कला *

श्री[१], भू[२], कीर्ति[३], इला[४], लीला[५], कान्ति[६], विद्या[७], विमला[८], उत्कर्षिणी[९], ज्ञाना[१०], क्रिया[११], योगा[१२], प्रह्वी[१३], सत्या[१४], ईशाना[१५], अनुग्रहा[१६]।

* अष्टसिद्धि *

अणिमा[१], महिमा[२], गरिमा[३], लघिमा[४], प्राप्ति[५], प्राकाम्य[६], ईषित्व[७], वशीत्व[८].

दोहा—अणिमा महिमा गरिमता, लघिमा प्राप्तीकाम।
बशीकरण अरु ईशता, हरिजन अष्ट न काम ॥ १४७ ॥

* नवनिधि नाम, दोहा *

निद्धि[१] महानिद्धि पद्मनिद्धि[२], संखनिद्धि[३] ले ज्ञान।
लक्ष्मिनिद्धि[४] जयनिद्धि[५] कही, बिजयनिद्धि[६] पहिचान ॥ १४८ ॥
उपनिद्धि[७] अनुपमनिद्धि[८], शास्त्र करी प्रमान।
सरसमाधुरी ने कहे, नवनिद्धि नाम बखान ॥ १४९ ॥

* वेदके तीन प्रकर्ण *

१ मंत्र वा संहिता—जिसमें मंत्र हैं (मंत्रका नाम संहिता भी है)
२ ब्राह्मण—जिसमें मंत्रका अर्थ तथा उसका उपयोग तथा विधान.
३ उपनिषद्—जिसमें मंत्र तथा ब्राह्मण का तत्त्वार्थ.

* वेदका तीन भाग *

कर्म,	ज्ञान,	उपासना व भक्ति,
८० हजार श्रुति.	४ हजार श्रुति.	१६ हजार श्रुति.

* तिथि निर्णय तथा एकादशी व्रत निर्णय *

एकादशी व जन्माष्टमी आदिक पूर्वविद्धा नहीं करनी चाहिये, पूर्वविद्धा वो कहलाती है कि जिसमें उससे पहली तिथि ४५ घडी से ज्यादा हो।

शरदपूर्णिमा यदि पूर्वविद्धा होवे तो कोई दोष नहीं है, जितनी जयन्ती हैं उनका व्रत एकादशी व्रत की तरह होना चाहिये।

* त्रिविधताप वर्णन, दोहा *

अध्यातम के दुख गिनों, क्षुधा पिपासा जान।
चोर व्याधि दुखको कहें, अधिभूतक पहिचान ॥ १५० ॥
नवग्रह भूत पिशाच के, दुखको कह अधिदेव।
तीन ताप के नाम यह, सरस समझ चित देव ॥ १५१ ॥

* चतुष्टय अंतहकरण धर्म वर्णन *

मन करता सङ्कल्प को, बुधि निश्चय करदेत।
चित चिन्तन नित करताहै, अहं अहं करलेत ॥ १५२ ॥

* कामदेव तीनप्रकार वर्णन *

१ भौतिक काम—जो लोक में प्रवर्त है।
२ अध्यात्मक काम— जो श्रीमहादेवजी ने दाह किया।
३ अधिदैविक काम—श्रीभगवान आप हैं, जिनका जन्म दिन वसन्त है, उसका उत्सव कियाजाता है, यह काम प्रेमानन्द-वर्द्धक है, जिसको रसानन्द कहते हैं।

* श्रीशुकमुनिराज बिनय, दोहा *

श्रीशुकमुनिमहाप्रभो, विनय सुनो चितलाय।

कृपाकरो भव दुखहरो, देहु प्रेम प्रगटाय ॥ १५३ ॥
सुमरो दम्पति रैंनदिन, आँसू द्रगन बहाय ।
गद गद स्वर रोमांच हो, तन मन सुधि बिसराय ॥ १५४ ॥
रसिकन संग निसि दिन रहौं, गाऊं गुन मनलाय ।
ललित लाडिली लालको, निजदृग लेहुं बसाय ॥ १५५ ॥
सेवक मोकों जानके, लीजे निकट बसाय ।
सेवा चरन सरोजकी, दीजे मोहि बताय ॥ १५६ ॥
सिवकाई श्री अंगकी करों हिये हुलसाय ।
सर्बस धन सेवा गिनों, स्वर्ग मुक्ति विसराय ॥ १५७ ॥
नित निरखूं छबि माधुरी, अतिही प्रीति लगाय ।
बांकी झांकी दृगबसे, चित इत उत नाहिं जाय ॥ १५८ ॥
तनमें मनमें नैन में, बसो लाडले आय ।
सरसमाधुरी ध्यान में, दीजे नाथ छकाय ॥ १५९ ॥

* सूतकनिर्णय *

संतान जन्मके समय १० दिनका आशौच होता है। दूधपीने वाले बालक के मरने पर दिनभर का आशौच रहता है। आठ दस बरस के बच्चे का ३ दिन का आशौच रहता है। और इससे ज्यादा उमर वाले का १० दिनका आशौच माना है। इसके प्रमाण में गरूड़पुराण तथा स्मृतियों के बाक्य हैं, विस्तार भयसे यहा सूक्ष्म करके वर्णन करते हैं, ॥

जातोविप्रो दशाहेन द्वादश हेन भूमियः ।
वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥
(पराशरस्मृतिः ११-४)

जननी शौचमें ब्राह्मण दशदिन से शुद्ध होजाता है । क्षत्रिय बारह दिन में शुद्ध होजाता है । वैश्य पंद्रह दिन में शुद्ध । और शुद्र एक महीने में शुद्ध होता है ।

दंतजातेऽनुजाते च कृतचूडे च संस्थिजो ।
अग्निसंस्कारणंतेषां त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ २८९ ॥
आदंताज्जन्मतः सद्य आचूडान्नैशिकीस्मृता ।
त्रिरात्रमाव्रतादेशा द्दशरात्रमतः परम् ॥ २९० ॥

दान्त जमजानें पर या चूड़ाकर्म होजाने पर यदि बालक मरजाय तो उसका अग्नि संस्कार करना चाहिये और तीन दिनतक आशौच मानना कर्तव्य है । और विना दान्त के जमेही यदि बालक मरजाय तो स्नान करने सेही नित्य शुद्धि होजाती है । चूड़ाकरण से प्रथमही बालक मरजाय तो एक दिन रात में शुद्धि होती है । यज्ञोपवीत विना हुए तीन दिन पीछे शुद्धि होती है, और बादमें दस दिनमें ॥ २८९–२९० ॥

सव्रतोमंत्रपूतश्च आहिताग्निश्चयोद्विजः ।
राज्ञश्चसूतकंनास्ति यस्यचेच्छातिपार्थिवः ॥ २९१ ॥

जो द्विज पवित्र भावसे व्रत और यज्ञ करता है, मन्त्र जाप से पवित्र है । और नित्य अग्निहोत्र करता है उस ब्राह्मण को, राजा को तथा राज चाहे उसको सूतक नहीं लगता, वह स्नान मात्रसेही पवित्र होजाते हैं ॥ २९१ ॥

* श्रीशुकसंप्रदाय सिद्धान्तचन्द्रिका फलस्तुति *

दोहावली ।

वेदव्यास प्रभुके सुवन, श्रीमत शुकमुनिराज ।
धर्म भागवत प्रवर्तक, सन्तन के सिरताज ॥ १६० ॥
सम्प्रदाय श्री शुकमुनी, प्रगट सकल संसार ।
श्याम चरनके दासप्रभु, आचारज अवतार ॥ १६१ ॥
भार्गव कुल भूषन भये, च्यवन वंश अवतंस ।
प्रगट भये कलिकाल में, अतिशय परम प्रशंस ॥ १६२ ॥
चार वेद को भेद जो, संमत शास्त्र पुरान ।
रच्यो भक्ति सागर सरल, पुस्तक अतिरसखान ॥ १६३ ॥
परमहंस शुचि संहिता, ताही के अनुसार ।
धर्म सनातन को कियो, कथनसु भली प्रकार ॥ १६४ ॥
ज्ञान योग वैराग्य अरु, प्रेम भक्ति रसरूप ।
आदि मध्य अरु अन्तमें, वर्णन करी अनूप ॥ १६५ ॥
यह सिद्धान्त सुचन्द्रिका, ताही के अनुसार ।
संग्रह करी सनेह सों, अतिउत्तम सुविचार ॥ १६६ ॥
पढें सुनें जो प्रेम सों, तज कुतर्क धर ध्यान ।
सरसमाधुरी सोइ करे, प्रेम रसामृत पान ॥ १६७ ॥

इति श्रीशुकसंप्रदाय सिद्धान्तचँद्रिका, पण्डित शिवदयाल, हरिसंबन्धी नाम सरसमाधुरी शरण गौड-द्विज, जयपुर निवासी ने स्वमार्गीय वैष्णवों के सुबोधार्थ संग्रह करके जेलप्रेस जयपुर में छपा कर प्रकाशितकिया,